शोधादर्श

७१

बिहार प्रदेश में नालन्दा जिले में स्थित

पावापुरी का जल मन्दिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भगवान महावीर

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद
पूर्व सम्पादक	:	(स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री सन्दीप कान्त जैन
	:	श्री अंशु जैन 'अमर'
	:	डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ - २२६ ००४, टेलीफोन सं. (०५२२) २४५१३७५

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्व है

शोधादर्श -७१

वीर निर्वाण संवत् २५३७ — नवम्बर २०१० ई.

विषय क्रम

१.	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	४
२.	गुरुगुण-कीर्तन : पण्डित प्रभाचन्द्र	श्री रमा कान्त जैन	५-१२
३	मानव जीवन का यथार्थ बोध : सहज वृत्तियां, पुरुषार्थ, कषाय	डॉ. शशि कान्त	१३-१७
४.	विजयनगर साम्राज्य	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	१८-२०
५.	भगवान महावीर की निर्वाण स्थली पावा	श्री अजित प्रसाद जैन	२१-२२, ५३

६.	तथाकथित वीर निर्वाण भूमि 'पावा' की प्राचीनता	डॉ. शिव प्रसाद	२३-२७
७.	The Jain Literature in Hindi	डॉ. उषा माथुर	२८-३०
८.	'परिशिष्ट पर्व' की भूमिका	डॉ. सागरमल जैन	३१-३५
९.	अहिंसा विमर्श	पं. निहाल चन्द जैन	३६-४३
१०.	साधुचर्या : प्रश्न जो समाधान चाहते हैं	श्रीमती इन्दु कान्त जैन	४४-४६
	सुमेरुचन्द दिवाकर कहाँ हैं?	श्री कैलाश चन्द जैन	४७
११.	साधक सिद्ध प्रवीण रहें (पद्य)	डॉ. परमानन्द जड़िया	४८
१२.	दीपावली (पद्य)	श्री अजित कुमार वर्मा	४८
१३.	मांग रहा मैं क्षमा (पद्य)	श्री राजीव कान्त जैन	४९
१४.	माटी की पुकार (पद्य)	श्री अमरनाथ	५०-५१
१६.	पुष्पेन्दु तुम्हें छूकर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया (पद्य)	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	५२-५३
१६.	साहित्य परिचय : 'दर्द का रिश्ता'	डॉ. परमानन्द जड़िया	५४-५५
		श्री मुकेश जैन	५५
१७.	साहित्य सत्कार	डॉ. शशि कान्त	५६-६३

मनीषियों की दृष्टि में आत्मानुभूति एवं धर्मध्यान, डॉ. परमानंद जड़िया की कृतियां, श्री स्वरोदय, सहज आनंद, जैन विद्या, दिव्य जीवन, बन्दे तद्गुण लब्धये, जिन शासन की दिव्य विभूतियां, मुक्ति की ओर, भक्तामर स्तोत्र, कुसुमांजलि, अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद का बुलेटिन, धर्ममंगल, गीत गंगा, भोजन और स्वास्थ्य,

श्वेतपिच्छाचार्य विद्यानन्द जी की कृतियां,
सम्पर्क २०१०, महालक्ष्मी क्षमावाणी,
Gems of Jaina Wisdom,
Family Background as a Function of
College-going Student Leaders

१८. अभिनन्दन ६४-६५

१९. आभार ६५

२०. शोक संवेदन ६६

२१. समाचार विविधा ६७-७०

मथुरा में जैन संग्रहालय
जैन मिलन लखनऊ
प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली
तत्वार्थ सूत्र युवा विद्वत् संगोष्ठी
श्रवणबेलगोला में वर्ल्ड जैन कांफ्रेस और विश्व जैन महासम्मेलन

२२. पाठकों के पत्र ७१-७६

श्री अमरनाथ, श्री अजित कुमार वर्मा
श्री इन्द्र कुमार साटीया, डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव
डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी, श्री कैलाश नारायण टण्डन
श्री ताराचंद जैन बख्शी, श्री दर्शन लाड़
पं. निहालचंद जैन, डॉ. परमानन्द जड़िया
श्री प्रेम कुमार जैन, श्री बी. डी. अग्रवाल
श्री मदन मोहन वर्मा, . श्री साहू शैलेन्द्र कुमार जैन
श्री सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, डॉ. संगीता मेहता

२३. सूचना ७६

२४. अनुक्रमणिका ६७-७१ ७७-८०

सम्पादकीय

हमें सन्तोष है कि सुधी पाठकों द्वारा और विद्वत् जगत द्वारा **शोधादर्श ७०** का भी अभिशंसात्मक रूप में स्वागत किया गया है। हम प्रयत्नशील हैं कि **शोधादर्श** की साज-सज्जा और इसमें प्रकाशित सामग्री स्तरीय बनी रहे तथा पाठकों को उपयोगी विचार-प्रेरणा देती रहे।

इस अंक के मुख पृष्ठ पर भगवान महावीर की निर्वाण स्थली के रूप में प्रचलित नालन्दा जिले के पावापुरी स्थित जलमन्दिर का चित्र दिया जा रहा है। इसके सम्बन्ध में डॉ. शिव प्रसाद ने ऐतिहासिक विवेचन दिया है जो इसी अंक में प्रकाशित है। हम भगवान महावीर के वास्तविक निर्वाणस्थल पर बने मन्दिर और उसके सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर रहे हैं जो शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी।

National Council for Educational Research & Training, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी में इतिहास की पुस्तकों में जैनधर्म और उनके आराध्य के सम्बन्ध में अमर्यादित, अशोभनीय एवं अनर्गल उल्लेख किये गये हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. राजेन्द्र कुमार बन्सल द्वारा विरोध पत्र भेजे गए और प्रकाशक ने आवश्यक संशोधन करने का आश्वासन दिया है। यह एक अभिनन्दनीय घटना है। तदपि यहां यह उल्लेख किया जाना प्रासंगिक होगा कि कक्षा ११ के लिए निर्धारित इतिहास की पाठ्य पुस्तक Ancient India पर १९९५ में Jainism के सम्बन्ध में प्रो. राम शरण शर्मा द्वारा लिखित पाठ पर आपत्ति की गई थी। डॉ. शशि कान्त का इस सम्बन्ध में प्रो. शर्मा से पत्राचार हुआ था। डॉ. शशि कान्त ने उस अध्याय का परिमार्जित आलेख भी प्रो. शर्मा और प्रकाशन संस्था को फरवरी १९९६ में उपलब्ध करा दिया था। इस सम्बन्ध में विवरण **शोधादर्श ३४** (मार्च १९९८) के पृष्ठ २६-४० पर अवलोकनीय है। वह विवेचन अभी भी प्रासंगिक है और यह उचित होगा कि डॉ. बंसल तथा अन्य जैन विद्वान उसका यथोचित संज्ञान लेकर जैन धर्म के सम्बन्ध में पाठ्य पुस्तकों में सही उल्लेख किये जाने के लिये प्रयत्नशील हों।

शोधकर्ता विद्वानों से हमारा पुनः निवेदन है कि वह अपने शोध-प्रबन्ध का ४ टंकित पृष्ठों में सार-संक्षेप **शोधादर्श** में प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं।

सभी पाठकों एवं विद्वान लेखकों के सहयोग और सद्भाव के लिये सम्पादक मण्डल अपना आभार व्यक्त करता है। **- नलिन कान्त जैन, सम्पादक**

पण्डित प्रभाचन्द्र

कर्णाटक में श्रवणबेलगोल में चन्द्रगिरि पर्वत पर कत्तिले बस्ती के दक्षिणी भाग में एक चतुर्मुख स्तम्भ है। उस स्तम्भ पर शक संवत् १०२२ (११०० ई.) का एक लेख उत्कीर्ण है, जिसमें विभिन्न आचार्यों आदि की प्रशस्ति अंकित है। वह लेख **'जैन शिलालेख संग्रह'** (प्रथम भाग) में लेख सं. ५५(६९) के अन्तर्गत पृष्ठ ११५-१२२ पर उद्धृत है। उस स्तम्भ लेख के दक्षिणी मुख पर श्लोक १७-१८ में पण्डित प्रभाचन्द्र की प्रशस्ति निम्नवत की गई है-

श्रीधाराधिप भोजराज-मुकुट-प्रोताश्म-रश्मि-च्छटा-
च्छाया-कुङ्कुम-पङ्क-लिप्त-चरणाम्भोजात-लक्ष्मीधवः।
न्यायाब्जाकरमण्डमे दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणि-
स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक-तरणिश्रीमान्प्रभाचन्द्रमाः।।१७।।
श्री चतुर्म्मुख-देवानां शिष्योऽधृष्यः प्रवादिभिः।
पण्डित श्री प्रभाचन्द्रो रुद्रवादि-गजाङ्कुशः।।१८।।

इसका भावार्थ है कि श्री धाराधीश भोजराज में जड़ी मणियों की रश्मियों की कान्ति से जिनके चरण-कमलों की श्री कस्तूरी चन्दन लेप के समान भासित होती थी (अर्थात् जिनके चरणों में मणिजटित मुकुटधारी धारा-नरेश भोजराज नमस्कार करते थे), जो न्यायरूपी कमलसमूह को मण्डित करने वाले दिनमणि (मार्त्तण्ड) थे (अर्थात् जो **प्रमेयकमल मार्त्तण्ड** के रचयिता थे), जो शब्दाब्ज (शब्दरूपी कमलों) को विकसित करने वाले रोदोमणि (भास्कर) थे (अर्थात् जिन्होंने **शब्दाम्भोजभास्कर** की रचना की थी) और जो पण्डित-पुण्डरीकों (पण्डितरूपी कमलों) को प्रफुल्लित करने वाले तरणि (सूर्य) थे ऐसे श्रीमान् प्रभाचन्द्र चिरजीवी हों अर्थात् उनका यश अक्षुण्ण रहे। श्री चतुर्म्मुख देवों के शिष्य, प्रवादियों द्वारा अविजित, रुद्रवादि गजों पर अंकुश रखने वाले श्री प्रभाचन्द्र पण्डित थे।

धारानरेश भोजराज का राज्यकाल सन् १०१० से १०५३ ई. तक रहा था। अतः ऊपर स्तम्भलेख में उल्लिखित पण्डित प्रभाचन्द्र ने **'प्रमेयकमल मार्त्तण्ड'** और **'शब्दाम्भोज भास्कर'** कृतियों का प्रणयन इस अवधि में किसी समय किया होगा, ऐसा अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

उक्त चन्द्रगिरि पर्वत पर महनवमी मण्डप में लगे चतुर्मुख स्तम्भ पर शक संवत् १०८५ (११६३ ई.) का एक लेख उत्कीर्ण है जो **जैन शिलालेख संग्रह** (प्रथम भाग)

में लेख सं. ३६ (६३) और ४० (६४) के रूप में पृष्ठ २१-३० पर समाहित है। उस स्तम्भ में पश्चिमी मुख पर उत्कीर्ण लेख के श्लोक संख्या १३-१६ से विदित होता है कि मूलसंघान्तर्गत नन्दिगण के प्रभेदरूप देशीगण में एक प्रसिद्ध मुनिराज गोल्लाचार्य हुए थे और उनके शिष्य अविद्धकर्ण (जिनके कान नहीं बिंधे हुये थे), कौमारदेवव्रती (जो कुमारावस्था से ही व्रती थे) और ज्ञानविधि (ज्ञान के सागर थे) ऐसे पद्मनन्दि सैद्धान्तिक थे। और उन पद्मनन्दि सैद्धान्तिक के शिष्य सिद्धान्त-सागर-पारंगत कुलभूषण नाम से यति तथा उनके सधर्मा श्री कुण्डकुन्दान्वय के मुनिराज पण्डितवर प्रभाचन्द्र थे जो **'शब्दाम्भोरुहभास्कर'** के कर्ता प्रथिततर्क ग्रन्थकार थे। उक्त स्तम्भलेख में आगे उक्त कूलभूषण मुनि की शिष्य-परम्परा आदि का तो उल्लेख है, किन्तु प्रभाचन्द्र की परम्परा का नहीं।

तत्त्वार्थवृत्तिपद, न्यायकुमुदचन्द्र और **क्रियाकलाप टीका** की प्रशस्तियों में भी उनके कर्ता प्रभाचन्द्र ने अपने को श्री पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का शिष्य सूचित किया है। किन्तु **प्रमेयकमल मार्त्तण्ड** की प्रशस्ति के निम्नलिखित पद्यों में उसके रचयिता पण्डित प्रभाचन्द्र ने श्री माणिक्यनन्दि की गुरुरूप में वंदना करते हुए अपने को श्री पद्मनन्दि सैद्धान्तिक का शिष्य और रत्ननन्दि के चरणों में रत बताया है -

गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः।
नन्दताद् दुरितैकान्तरजा जैनमतार्णवः।
श्रीपद्मनन्दिसैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः।
प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयात् रत्ननन्दिपरेतः।।४।।

और प्रशस्ति के श्लोक १ में उक्त ग्रंथ के प्रणयन हेतु माणिक्यनन्दि का आभार निम्नवत व्यक्त किया है -

गम्भीरं निखिलार्थगोचरमलं शिष्यप्रबोधप्रदं
यद्वयक्तं पद्मद्वितीयमखिलं माणिक्यनन्दिप्रभोः।
तद्व्याख्यातमदो यथावगमतः किंञ्चिन्मयालेशतः।
स्थेयाच्छुद्धधियां मनोरतिगहे चन्द्रार्कतारावधि।।१।।

और पुष्पिका वाक्य में ग्रन्थ रचना के समय, स्थान और विषय को निम्नवत निर्दिष्ट किया है -

"श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठिपदप्रणामार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाण-प्रमेयस्वरूपोद्योतपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति।"

इससे स्पष्ट है कि **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड'** की रचना प्रभाचन्द्र पण्डित ने धारानगरी में निवास करते हुए श्री भोज देव के राज्य में समस्त प्रमाण-प्रमेय के

स्वरूप को समझाने वाले ग्रन्थ **'परीक्षामुख'** की टीका-स्वरूप की थी। **'परीक्षामुख'** उक्त माणिक्यनन्दि (लगभग ९५०-१०५० ई.) का न्याय विषयक सूत्र-ग्रन्थ है। प्रभाचन्द्र कृत उक्त टीका १२,००० श्लोक प्रमाण बताई जाती है। कालान्तर में चारुकीर्ति ने उसी पर अपना भाष्य **'प्रमेयरत्नमालालंकार'** नाम से रचा और उसमें प्रभाचन्द्र सूरि और उनकी उक्त कृति तथा माणिक्यनन्दि का सादर स्मरण निम्नवत् किया -

जयतु प्रभेन्दुसूरिः प्रमेयकमलप्रकाण्डमार्त्तण्डेन।
यद्वदननिस्सृतेन प्रतिहतमखिलं तमो हि बुधवर्गाणाम्।।

\- -

माणिक्यनन्दिरचितं क्वनुसूत्रवृन्दं।
क्वाल्पीयसी मम मतिस्तु तदीय भक्त्या।
तादृक् प्रभेन्दुवचसां परिशीलनेन।
कुर्वे प्रभेन्दुमधुना बुधहर्षकन्दम्।।

पण्डित प्रभाचन्द्र की कृति **'शब्दाम्भोजभास्कर'** अपरनाम **'शब्दाम्भोरुहभास्कर'** के अब तीन-साढ़े तीन अध्याय उपलब्ध बताये जाते हैं। यह कृति देवनन्दि पूज्यपाद (४६४-५२४ ई.) के व्याकरण ग्रन्थ **'जैनेन्द्र महान्यास'** पर आधारित बताई जाती है।

'तत्त्वार्थवृत्तिपद' गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वाति (४०-६० ई.) के **'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र'** पर देवनन्दि पूज्यपाद की **'तत्त्वार्थवृत्ति'** के विषम पदों का संक्षिप्त अर्थसूचक टिप्पण ग्रन्थ है।

'न्यायकुमुदचन्द्र' भट्ट अकलंकदेव (६२५-६७५ ई.) द्वारा प्रमाण प्रवेश, नय प्रवेश और प्रवचन प्रवेश नामक न्याय विषयक तीन प्रकरणों को लेकर रची गई कृति **'लघीयस्त्रय'** और उसकी **स्वोपज्ञविवृत्ति** (स्वररचित टीका) पर रचा गया न्याय-विषयक विशद व्याख्यान है। ग्रन्थ का पुष्पिका-वाक्य निम्नवत् है -

''श्री जयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठि - प्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमकलंकेन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन न्यायकुमुदचन्द्रो लघीयस्त्रयालंकारः कृतिः इति मंगलम्।''

इससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना पण्डित प्रभाचन्द्र ने धारा नगरी में श्री जयसिंहदेव (१०५३-१०६० ई.) के राज्यकाल में की थी।

'न्यायकुमुदचन्द्र' की प्रशस्ति में आये इस पद्य

''अभिभूव निजविपक्षं निखिलमतोद्योतनो गुणाम्बोधिः।
सविता जयतु जिनेन्द्रः शुभ प्रबन्धः प्रभाचन्द्र।।''

से विदित होता है कि उन्होंने एक 'प्रबन्ध' की भी रचना की थी। **'आराधना सत्कथाप्रबन्ध'** नाम से उपलब्ध कृति, जो एक गद्यकथाकोश है, की प्रशस्ति में भी पण्डित प्रभाचन्द्र ने ऊपर अंकित प्रशस्ति के अनुरूप उसकी रचना धारा नगरी में रहते हुए श्री जयसिंहदेव के राज्यकाल में किये जाने की बात लिखी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस कथाप्रबन्ध की रचना **'न्यायकुमुदचन्द्र'** की रचना के पूर्व हो चुकी थी।

'क्रियाकलाप टीका' प्रभाचन्द्र ने अपने गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्तिक की कृति **'क्रियाकलाप'** पर रची थी।

हुम्मच के पद्मावती मंदिर के प्रांगण में एक शिलाखण्ड पर, बिना काल-निर्देश का, एक लेख उत्कीर्ण मिला है जो **जैन शिलालेख संग्रह** (तृतीय भाग) में लेख सं. ६६७ के अन्तर्गत पृष्ठ ५१४-५२६ पर संकलित है। लेख प्रारंभ में कन्नड़ में तथा तदनन्तर संस्कृत में निबद्ध है। लेख को पढ़ने से ऐसा विदित होता है कि वह विजयनगर सम्राट कृष्णदेवराय के राज्यकाल (१५०६-१५३० ई.) में हुए प्रसिद्ध वादी विद्यानन्द स्वामी के निलय में आयोजित कल्याण-पूजा-उत्सव पर स्वामीजी के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति और उनके शिष्य वर्द्धमान मुनि द्वारा स्वामीजी की प्रशस्तिस्वरूप लिखाया और उत्कीर्ण कराया गया था। उक्त शिलालेख में स्वामीजी और उनके उपर्युक्त शिष्यों के उल्लेख के अतिरिक्त कई अन्य तत्कालीन एवं पूर्वज आचार्यों-विद्वानों आदि को भी स्मरण किया गया है। लुइस राइस ने लेख का समय १५३० ई. अनुमानित किया है। उक्त लेख में उपर्युक्त माणिक्यनन्दि और प्रभाचन्द्र का उल्लेख भी निम्नवत् मिलता है -

> **माणिक्यनन्दी जिनराज-वाण-प्राणाधिनाथः पर वादि-मर्द्दी।**
> **चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायाम मार्त्तण्ड-वृद्धौ नितरां व्यदीपित्।।**
> **सुखी ...... न्यायकुमद चन्द्रोदय-कृते नमः।**
> **शाकटायन-कृत्सूत्र न्यास-कर्त्रे व्रतीन्दवे।।**

इससे विदित होता है कि व्रती प्रभाचन्द्र की **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड'** और **'न्यायकुमुदचन्द्र'** के साथ-साथ वैयाकरण शाकटायन द्वारा रचित व्याकरण सम्बन्धी सूत्रों पर कोई न्यास रचने की भी ख्याति रही थी। वैयाकरण शाकटायन राष्ट्रकूट नरेश अमोधवर्ष के राज्यकाल (८१५-८७७ ई.) में हुए थे।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र को आचार्य कुन्दकुन्द (ई. पू. ८-४४) के **'पंचत्थिपाहुण'** (पंचास्तिकाय) पर **'पंचास्तिकायप्रदीप'** और **'प्रवचनसार'** पर **'प्रवचनसार-सरोजभास्कर'**, आचार्य समन्तभद्र (लगभग १२०-१८५ ई.) रचित **'रत्नकरण्ड श्रावकाचार'** पर **'रत्नकरण्डश्रावकाचार -**

टीका', देवनन्दि पूज्यपाद के **'समाधितन्त्र'** पर **'समाधितन्त्र - टीका,'** आदिपुराणकार जिनसेन (७७०-८५० ई.) के शिष्य गुणभद्र द्वारा रचित **'आत्मानुशासन'** पर **'आत्मानुशासनतिलक'** नामक टिप्पण और पुष्पदंत के **महापुराण** (९६५ ई.) पर **'महापुराण-टिप्पण'** रचने का भी श्रेय दिया जाता है। चूंकि प्रभाचन्द्र नाम के अनेक विद्वान-आचार्य हुए हैं, अतः यह गवेषणा का विषय है कि क्या उपर्युल्लिखित सभी कृतियों के रचयिता **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड'** के कर्ता पण्डित प्रभाचन्द्र ही हैं?

'पंचास्तिकायप्रदीप' और **'समाधितन्त्र-टीका'** (**समाधिशतक टीका**) में रचनाकार ने **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड'**, **'न्यायकुमुदचन्द्र'** और **'आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध'** की भाँति अपने नाम के साथ 'पण्डित' विशेषण का प्रयोग किया है, अतः इनके रचनाकार एक ही प्रभाचन्द्र प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार **'समाधितन्त्र-टीका'**, से शैलीगत साम्य तथा **'आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध'** में पायी जाने वाली कथाओं से साम्य के आधार पर **'रत्नकारण्डश्रावकाचार-टीका'** के कर्त्त भी उक्त पण्डित प्रभाचन्द्र प्रतीत होते हैं।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र मूलतः दक्षिण भारत के निवासी थे और वहीं वे कूलभूषण यति के साथ अविद्धकर्ण, कौमारदेवव्रती, ज्ञाननिधि पद्मनन्दि सैद्धान्तिक के शिष्य बने, किन्तु कालान्तर में उत्तर की ओर विहार कर धारा नगरी में जा बसे जहाँ वे **'परीक्षामुख'** के रचयिता माणिक्यनन्दि के सम्पर्क में आये और उनसे न्याय विषयक ज्ञान अर्जित कर उन्हें भी अपना गुरु माना।

'सुदंसणचरिउ' और **'सकलविधि-विधान-काव्य'** के रचयिता नयनंदी भी उक्त माणिक्यनन्दि के शिष्य थे। उन्होंने अपने **'सकलविधि-विधान-काव्य'** में अपने गुरु के साथ-साथ अपने सह-अध्यायी प्रभाचन्द्र का भी स्मरण किया है, जिससे लगता है वे भी इनकी प्रतिभा से प्रभावित थे। अपने **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड'** में प्रभाचन्द्र ने अपने को रत्ननन्दि के चरणों में भी रत बताया है। ये रत्ननन्दि कौन थे और कहाँ व कैसे प्रभाचन्द्र के गुरु बने, यह स्पष्ट नहीं है। प्रभाचन्द्र द्वारा अपनी कृतियों में अपने नाम के साथ 'पण्डित' विशेषण लगाने से ऐसा भासित होता है कि वे एक गृहस्थ विद्वान थे और उन्होंने अपनी अधिकतर कृतियों का प्रणयन धारा नगरी में निवास करते हुए धारा-नरेश भोजराज और जयसिंहदेव के राज्यकाल में किया था। चारुकीर्ति कृत **'प्रमेयरत्नमालालंकार'** में उन्हें **'प्रभेन्दुसूरिः'** उल्लिखित किये जाने से लगता है कि संभव है उन्होंने कालान्तर में मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली हो और जिन कृतियों में पण्डित विशेषण का प्रयोग नहीं है वे उनकी दीक्षा के उपरान्त की कृतियां

हों। **'आत्मानुशासनतिलक'** के अन्त में **'प्रभाचन्द्राचार्यविरचितं'** तथा **'प्रवचनसार-सरोजभास्कर'** के अन्त में **'इति-श्री प्रभाचन्द्रदेव विरचिते'** अंकित पाया जाता है। यह भी संभव है कि ये रचनायें किन्हीं अन्य प्रभाचन्द्र की हों। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि **'जैनग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह'** (प्रभम भाग) (वीर सेवा मन्दिर) में प्रशस्ति सं. १३४ **'द्रव्यसंग्रहवृत्ति'** की है, जिसके अन्त में अंकित है -

''इति श्रीपरमागमिकभट्टारक-श्रीनेमिचन्द्रविरचित-षड्द्रव्यसंग्रहे श्रीप्रभाचन्द्रदेवकृतसंक्षेपटिप्पणकं समाप्तम्।।''

और पण्डित परमानन्द शास्त्री ने विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र से भिन्न इसका कर्ता माना है।

डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य द्वारा सम्पादित तथा माणिक्यचन्द्र जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित **'न्यायकुमुदचन्द्र'** में पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री ने अपनी विशद् प्रस्तावना में इस बात पर प्रभूत प्रकाश डाला है कि विवेच्य प्रभाचन्द्र ने न केवल जैन ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन-मनन किया था अपितु जैनेतर साहित्य ओर दर्शनों का भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था। कमलशील कृत **'तत्त्वसंग्रह की पञ्जिका'** और जयन्तभट्ट की **'न्यायमञ्जरी'** के भाषा-सौष्ठव और प्रतिवादन शैली से वे विशेष रूप से प्रभावित रहे। वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, मीमांसा, बौद्ध और वैयाकरण दर्शनों का ज्ञान उन्हें अपनी बात तुलनात्मक और युक्तियुक्त ढंग से प्रस्तुत करने और विपक्षियों के तर्कों का खण्डन करने में सहायक बना। पण्डित कैलाशचन्द्रजी ने प्रभाचन्द्र की कृतियों की भाषा ललित और शैली निर्बाध प्रवाहवाली बतायी है। विद्यानन्द और अनन्तवीर्य से प्रेरणा लेने वाले विवेच्य प्रभाचन्द्र ने व्याख्या हेतु अपनी अलग शैली विकसित की थी और उसका प्रभाव अनेक परवर्ती रचनाकारों पर पड़ा जिनमें **'सन्मतितर्कटीका'** के रचयिता अभयदेवसूरि और **'स्याद्वादरत्नाकर'** के रचयिता वादिदेवसूरि का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य हेमचन्द्र की **'प्रमाणमीमांसा'** पर भी प्रभाचन्द्र का प्रभाव बताया जाता है।

प्रभाचन्द्र नाम के अनेक विद्वान, आचार्य आदि हो जाने तथा कृतियों में रचनाकार के विषय में पूर्ण विवरण के अभाव में विवेच्य पण्डित प्रभाचन्द्र का काल निर्धारण करने में विद्वानों में काफी ऊहापोह और मतभेद रहा, तथापि **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड'** में धारा-नरेश भोजराज और **'न्यायकुमुदचन्द्र'** **'आराधना-सत्कथा-प्रबन्ध'** एवं **'समाधितन्त्र-टीका'** में श्री जयसिंहदेव का स्पष्ट उल्लेख होने से तथा अन्य अन्तः एवं बहिर्साक्ष्यों के परीक्षण के आधार पर डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य और डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने इनका समय ९८० ई. से १०६५ ई. के मध्य अनुमानित किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि **'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड'** और **'न्यायकुमुदचन्द्र'** जैसे तर्क और न्याय विषयक ग्रन्थों व **'शब्दाम्भोजभास्कर'** और **'शाकटायनन्यास'** जैसे व्याकरण-ग्रन्थों के रचयिता तथा **'पंचास्तिकाय'**, **'तत्त्वार्थवृत्ति'**, **'समाधितन्त्र'** और **'क्रियाकलाप'** जैसे पूर्ववर्ती गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक ग्रन्थों का भाष्य करने वाले तथा संस्कृत गद्य में कथा-कहानी जैसे ललित विषय पर लेखनी चलाने वाले, शास्त्रादि में वादियों को परास्त करने वाले विवेच्य प्रभाचन्द्र अगाध ज्ञान वाले, विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, अद्भुत क्षमता के प्रकाण्ड पण्डित थे।

उक्त पण्डित प्रभाचन्द्र के अतिरिक्त प्रभाचन्द्र नामधारी जिन अन्य विद्वानों-आचार्यों आदि का विवरण हमें मिल सका है, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दे देना प्रासंगिक होगा। काल-क्रमानुसार उनका विवरण निम्नवत् है -

(१) **'जैन शिलालेख संग्रह'** प्रथम भाग में संकलित श्रवणबेलगोल के शिलालेख १ (शक संवत् ५२२ अर्थात् ६०० ई.) में उल्लिखित आचार्य प्रभाचन्द्र जो भद्रबाहु श्रुतकेवलि (लगभग ३४० ई.पू.) के शिष्य 'राजा चन्द्रगुप्त' रहे बताये जाते हैं।

(२) वृहद्प्रभाचन्द्र जिन्होंने उमास्वामि के मूल **'तत्त्वार्थसूत्र'** के सूत्रों का संक्षिप्तिकरण करते हुए १० अध्यायों में शताधिक सूत्रों में **तत्वार्थसूत्र** की रचना की थी। इस सूत्र-ग्रन्थ में पूज्यपाद और अकलंकदेव आदि के आधार पर यत्र-तत्र परिवर्तन-परिवर्द्धन किया गया बताया जाता है। इन वृहद्प्रभाचन्द्र का समय उमास्वामि (४०-६० ई.) के उपरान्त ही संभव है।

(३) **'अर्हत्प्रवचन'** के कर्ता प्रभाचन्द्र जिन्होंने उपर्युक्त वृहद्प्रभाचन्द्र के **'तत्वार्थसूत्र'** के अध्ययनोपरान्त उक्त ग्रन्थ की रचना ५ अध्यायों में ८४ सूत्रों में की बताई जाती है। अकलंकदेव (६२५-६७५ ई.) द्वारा अपनी **'तत्त्वार्थराजवार्तिक'**, ५.३८, में 'उक्तञ्च अर्हत्प्रवचने' लिखकर जिस ग्रन्थ का निर्देश किया गया है वह कदाचित् उक्त ग्रन्थ ही हो।

(४) देवनन्दि पूज्यपाद (४६४-५२४ ई.) के **'जैनेन्द्रमहान्यास'** में 'रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य' द्वारा उल्लिखित प्रभाचन्द्र।

(५) परलुरु निवासी आचार्य विनयनन्दि के शिष्य प्रभाचन्द्र जिन्हें चालुक्य नरेश कीर्तिवर्मा प्रथम ने शक संवत् ४८६ अर्थात् ५६७ ई. में दान दिया था।

(६) पुन्नाटसंघीय जिनसेन कृत **'हरिवंशपुराण'** (७८३ ई.) में उल्लिखित कुमारसेन के शिष्य प्रभाचन्द्र।

(७) सेनसंघीय जिनसेन स्वामी (७७०-८५० ई.) कृत **आदिपुराण** में उल्लिखित कवि प्रभाचन्द्र जिन्होंने **'चन्द्रोदय'** की रचना की थी।

(८) श्रवणबेलगोल के समीपवर्ती सोमवार बस्ति के समीप शक संवत् १००१ (१०७६ ई.) के शिलालेख में उल्लिखित काणूरगण के प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव।

(९) सेनगण के भट्टारक बालचन्द्र के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र जिनका समय १२वीं शती ईस्वी अनुमानित है।

(१०) **'प्रभावकचरित'** (१२७७ ई०) के रचयिता प्रभाचन्द्र सूरि।

(११) मूलसंघ देशीयगण पुस्तकगच्छ की इंग्लेश्वर शाखा में हुए, सारत्रय (**समयसार, प्रवचनसार** और **पंचास्तिकायसार**) में निपुण तथा **'परमागमसार'** और **'भावसंग्रह'** कृतियों के रचयिता श्रुतमुनि के शास्त्रगुरु प्रभाचन्द्र मुनि। इनका उल्लेख श्रुतमुनि ने शक संवत् १२६३ (१३४१ ई.) में मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी को पूर्ण किये गये अपने **'परमागमसार'** की प्रशस्ति में किया है।

(१२) विक्रम संवत् १४८९ (१४३२ ई.) में भाद्रपद शुक्ल पंचमी को सकीटनगर (जिला एटा, उत्तर प्रदेश) में लंबकंचुक (लमेचु) जाति के सकरु साहु के पंडित पुत्र सोनिक की प्रार्थना पर और ब्रह्मचारी जैता के प्रबोधनार्थ उमास्वामि के **'तत्त्वार्थसूत्र'** पर **'तत्त्वार्थरत्नप्रभाकर'** नामक टीका रचने वाले भट्टारक प्रभाचन्द्र जो काष्ठान्वय में आचार्य नयसेन की परम्परा में भट्टारक हेमकीर्ति के शिष्य भट्टारक धर्मचन्द के पश्चात् पट्टासीन हुए।

(१३) मूलसंघ सरस्वतीगच्छ में हुए भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य और **'ज्ञानसूर्योदय'** नाटक के रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र के गुरु भट्टारक प्रभाचन्द्र। **'ज्ञानसूर्योदय'** नाटक की रचना मधूकनगर में संवत् १६४८ (१५९१ ई.) की माघ शुक्ल अष्टमी को हुई थी। उसकी प्रशस्ति में भट्टारक वादिचन्द्रसूरि ने अपने गुरु भट्टारक प्रभाचन्द्र का उल्लेख किया है।

(१४) मुमुक्षु विद्यानन्दि द्वारा गान्धारपुरी में संवत् १७७९ (१७२२ ई.) में रचित **'सुदर्शनचरित्र'** की प्रशस्ति में उल्लिखित रत्नकीर्ति के पश्चात् पट्टासीन होने वाले प्रभेन्दु अर्थात् प्रभाचन्द्र भट्टारक।

- श्री रमा कान्त जैन

('जैन विद्या', २४, मार्च २०१०, प्रभाचन्द्र विशेषांक, से साभार। श्री रमा कान्त जी द्वारा यह लेख उक्त विशेषांक के लिए विशेष रूप से निबद्ध किया गया था। -सम्पादक)

मानव जीवन का यथार्थ बोध

-डॉ. शशि कान्त

प्रत्येक जीवधारी के अस्तित्व के मूल में चार सहज वृत्तियां हैं। ये सहज नैसर्गिक (basic natural instincts) आहार, निद्रा, भय और मैथुन हैं।

मनुष्य के जीवन को साधने की दृष्टि से चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। ये पुरुषार्थ (functions) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं।

सांसारिक मोहजाल में व्यक्ति को उलझानें के लिए और जीवन को संघर्षमय बनाने के लिए चार कषाय मूलतः हेतु हैं। ये कषाय (perversions) क्रोध, मान, माया और लोभ हैं।

यद्यपि ये तीनों प्रकार के चतुष्वर्ग चराचर जगत में सभी प्राणधारियों के लिए सुसंगत हैं, हम यहां मानव जीवन की अपेक्षा से इनकी चर्चा करना चाहेंगे ताकि जीवन की प्रासंगिकता और उपादेयता को समझा जा सके।

सहज वृत्तियां

कायारूपी इन्जन के चालन और रख-रखाव के लिए जो व्यवस्था आवश्यक है उसकी पूर्ति के लिए प्रत्येक जीवधारी में एक स्वतः स्फूर्त प्रक्रिया होती है। इसी को सहज नैसर्गिक वृत्ति कहा जाता है। मानव जीवन के परिप्रेक्ष्य में इन वृत्तियों की चर्चा यहां अभिप्रेत है।

आहार

प्रत्येक व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकता आहार या भोजन (food) है। भोजन ही शरीर रूपी इंजन में ईंधन का काम करता है और उससे जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसी से शरीर अनुप्राणित होता है। व्यक्ति का सारा प्रयत्न सबसे पहले भोजन की व्यवस्था के लिए होता है। भोजन कैसा हो, यह किसी व्यक्ति के परिवेश और संस्कार पर निर्भर करता है। कुछ ऐसे स्थान हो सकते हैं जहां जलवायु के कारण किसी एक प्रकार का भोज्य पदार्थ ही उपलब्ध हो, वहां के रहने वाले उसी भोज्य पदार्थ को भोजन के रूप में सामान्यतः ग्रहण करेंगे। परन्तु संस्कारवश उस प्रदेश में भी यदि वह भोज्य पदार्थ किसी व्यक्ति के लिए अखाद्य है तो वह उसे सरलता पूर्वक ग्रहण नहीं करेगा। अतः आहार के प्रकार के सम्बन्ध में कोई दृढ़ व्यवस्था निर्दिष्ट किया जाना स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता।

निद्रा

मानव शरीर वस्तुतः एक मशीन है। जिस प्रकार किसी भी मशीन को कुछ समय कार्य करने के बाद विश्राम दिया जाना आवश्यक होता है वही स्थिति मनुष्य के शरीर की भी है। पेट भर जाने पर व्यक्ति की स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह कुछ देर विश्राम करे। विश्राम की अवस्था निद्रा का रूप ले लेती है। मनुष्य के जीवन में निद्रा का विशेष महत्व है। निद्रा के समय ही जो कुछ भी हम भोजन के रूप में ग्रहण करते

हैं वह पचता है और उससे ऊर्जा अनुप्राणित होती है, शरीर के विभिन्न अंगों में रक्त का संचार होता है और विभिन्न अवयव तनाव मुक्त होकर पुनः अपनी स्वाभाविक स्वस्थ स्थिति में आ जाते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं वरन् सभी प्राणियों को चाहे वे जलचर या नभचर भी हों तथा सभी पेड़-पौधों को भी निद्रा रूपी विश्राम की आवश्यकता होती है।

भय

हर जीवधारी प्राणी में स्वाभाविक रूप से भय (fear, anxiety) का भाव विद्यमान रहता है। पूर्णतया निर्भय और निश्चिन्त कोई व्यक्ति स्वाभावतः नहीं हो सकता। कुछ लोग यह कहते अवश्य हैं कि उन्हें किसी प्रकार का भय या चिन्ता नहीं है परन्तु यह वास्तविकता नहीं है। वास्तव में भय जीवित होने का एक लक्षण भी है। केवल मूर्छित अवस्था में ही जब उसकी संज्ञा शून्य हो जाती है और चेतना सुप्त हो जाती है, व्यक्ति भय या चिन्ता के अहसास से शून्य होता है परन्तु जैसे ही चेतना वापस आती है उसकी यह वृत्ति पुनः जाग्रत हो जाती है।

मैथुन

जब कोई व्यक्ति भोजन प्राप्त कर लेता है और स्वस्थ अवस्था में होता है तो उसकी नैसर्गिक चाहना आनन्द का उपभोग करने की होती है। आनन्द प्राप्ति की यह वृत्ति प्रकृति में सर्वत्र विद्यमान है। स्थूल रूप से इसे मैथुन (sex) से सूचित किया जाता है। मैथुन या सैक्स आनन्द के आलावा प्रजनन का भी माध्यम है जिसके आधार से जीवन का क्रम चलता रहता है। सरल भाषा में इसे सहचर्य का सुख कहा जा सकता है। मित्रों के परस्पर मिलन में और बातचीत में भी इसका अनुभव किया जा सकता है।

मानव जीवन की इन नैसर्गिक वृत्तियों को आम आदमी की भाषा में खाना-पीना, सोना, रोना और हंसना भी कहा जा सकता है।

पुरुषार्थ

जीवन क्रम को चलाने के लिये पुरुषार्थ की आवश्यकता है। सीधी सरल भाषा में कहा जाये तो प्रत्येक मनुष्य को जीवित रहने के लिये कुछ-न-कुछ कार्य करते रहना स्वाभाविक है। जीवन को गतिमान रखने के लिये क्रियाशीलता उसी प्रकार आवश्यक है जैसे कि किसी मशीन में विभिन्न कल-पुर्जों की क्रियात्मकता। कल-पुर्जे यदि निष्क्रिय हैं तो धीरे-धीरे इनमें जंग लग जाता है या अन्य प्रकार से गतिहीनता आ जाती है और मशीन के लिये वे अनुपयोगी हो जाते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से मनुष्य की क्रियाशीलता की प्रवृत्ति (functional attitude) इसी का एक रूप है।

पुरुषार्थ को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में बताया गया है। इनको तथाकथित धार्मिक अथवा आध्यात्मिक रूप में न लेकर सामान्य व्यावहारिक और लौकिक दृष्टि से समझने में मनुष्य जीवन में इनका उपयोग सार्थक रूप में समझा जा सकता है।

धर्म

सामाजिक, पारिवारिक और विशुद्ध व्यक्तिगत दृष्टिकोण से देखने पर धर्म का सामान्य निदर्शन, कर्तव्यबोध से होता है। पूजा-अर्चना, ईश्वर-भक्ति, ध्यान-साधना तथा अन्य आध्यात्मिक कहे जाने वाले कार्यों से धर्म को इस प्रसंग में व्याख्यायित करना उपादेय नहीं है। यहां इसका आशय है कि मनुष्य को अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में मर्यादित एवं अनुशासित रूप में अपने कर्तव्यों और दायित्वों का सम्यक् रूप से निर्वहन एवं निष्पादन करना है। सामाजिक क्षेत्र का विस्तार उन सभी प्रवृत्तियों में होता है जिनके माध्यम से व्यक्ति अर्थ का उत्पादन करता है।

अर्थ

अर्थ या धन उन समग्र संसाधनों को सूचित करता है जिनके आधार से व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक और उपयोगी बनाने के लिये प्रयत्नशील रहता है। केवल धन सम्पत्ति से ही अर्थ का बोध नहीं होता। इसका अपना व्यापक स्वरूप है। आर्थिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में मनुष्य की जो भौतिकतावादी प्रगति और समृद्धि है तथा उसके द्वारा प्रकृति पर प्रभुत्व की जो आकांक्षा है वह सभी अर्थ के अन्तर्गत आता है। ज्ञान-विज्ञान की उन्नति और प्रगति भी इसी का परिलक्षित रूप है।

काम

काम का सरल भाव आनन्द भोग है। जब व्यक्ति समृद्ध होता है तब वह विभिन्न प्रकार के आनन्द का उपभोग करने में समर्थ होता है। अर्थ से समृद्धि प्राप्त होती है और धर्म के अनुपालन से उसे अर्थ का उपार्जन करने में सहायता मिलती है। सौन्दर्यानुभूति, कला-प्रियता तथा विभिन्न प्रकार के मनोविनोद के साधन इस काम पुरुषार्थ को सूचित करते हैं, मात्र यौन सुख या आनन्द ही इससे अभिप्रेत नहीं है।

मोक्ष

व्यावहारिक जीवन में मोक्ष का सामान्य अर्थ है कि जब व्यक्ति सब प्रकार के आनन्द उपभोगों से तृप्ति का अनुभव करने लगे तो वह स्वाभिवक रूप से उनसे अलग होता जाय। तृप्ति के बाद विरक्ति स्वभाविक क्रिया है। सांसारिक आनन्द भोगों से विरक्ति का भाव ही मोक्ष या मुक्ति का बोध कराता है। यदि हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों को व्यावहारिक और लौकिक रूप से जानने-समझने का प्रयत्न करेंगे तो ये पुरुषार्थ जीवन को सार्थक बनाने में सहायक होंगे।

कषाय

कषाय से तात्पर्य उन स्वाभाविक मनोवृत्तियों से है जो व्यक्ति के मन-मस्तिष्क को इस प्रकार प्रभावित करती हैं कि वह स्वतन्त्र रूप से व निरपेक्ष भाव से सोचने-समझने में अक्षम हो जाता है। ये प्रवृत्तियां मनुष्य के सहजतापूर्वक जीवन-यापन करने की क्षमता को प्रभावित करती हैं। उनके प्रभाव से उसमें समता और समन्वय

का भाव समाप्त हो जाता है और वह दूसरे की भावना के प्रति उदासीन हो जाता है।

आध्यात्मिक भाषा में यह कहा जाता है कि कषाय जीव को या आत्मा को कस लेती है या बांध लेती है जिसके कारण जीव अपने स्वभाव से विमुख हो जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से कषाय रूपी विकृतियां मनुष्य के स्वभाव को इस प्रकार प्रभावित करती हैं कि उसका व्यवहार असामाजिक, अनैतिक और अशांति-प्रदायी हो जाता है। जब इनका अतिरेक होता है तो एक मनोरोग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और विक्षिप्तता सदृश स्थिति का आभास होने लगता है।

क्रोध

किसी के साथ विवाद होने पर अथवा किसी के प्रति अप्रिय भाव होने पर या क्लेश भाव होने पर जब व्यक्ति आवेश में आ जाता है और अपना मानसिक सन्तुलन खो देता है तब वह क्रोध में होता है। क्रोध का शरीर के विभिन्न अंगों पर तत्काल प्रभाव होता है। उसका चेहरा तमतमा जाता है, आवाज भयंकर हो जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है और हाथ-पैर आदि थरथराने लगते हैं। आवेश में गाली-गलौज के बाद मार-पीट पर भी उतारू हो जाता है। ईर्ष्या और द्वेष क्रोध की अग्नि को भड़काते हैं। शारीरिक रूप से कष्ट पहुँचाना, यहां तक कि हत्या भी कर देना क्रोध के प्रस्फुटन का एक रूप है। अपने विरोधी को अन्य प्रकारों से भी हानि पहुंचाना और त्रास देना यद्यपि वह प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं भी होता है उसकी क्रोध की भावना इस हानिकारक कार्य में हेतु होती है। क्रोध में हिंसा का भाव है और इसीलिए कुप्रवृत्तियों (perversions) में इसको सर्वोपरि स्थान दिया गया है।

मान

मान से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने अहं भाव को सर्वोपरि समझने लगता है। स्वयं को ही महत्वपूर्ण मानने लगता है। अपने बड़प्पन के घमण्ड में दूसरों की अवमानना, अपमान और तिरस्कार करने लगता है। इससे कटुता का वातावरण सृजित होता है। जब दो व्यक्तियों के अहं टकराते हैं तो एक विषम स्थिति उत्पन्न होती है और वे एक-दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न में लग जाते हैं। परिवार में यह कलह का कारण होता है। पति-पत्नी के बीच इस प्रकार की स्थिति होने पर सम्बन्ध-विच्छेद की नौबत आ जाती है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में इसका परिणाम सत्ता के लिये संघर्ष के रूप में प्रतिफलित होता है।

मान का उपरोक्त रूप विनाशकारी है और व्यक्ति के मानसिक संतुलन को प्रभावित करता है। परन्तु आत्म-सम्मान के रूप में इसका सकारात्मक पक्ष भी है। अहंकार अर्थात् स्वयं की श्रेष्ठता पर घमंड और अहं की स्वीकारिता अर्थात् आत्म-सम्मान, ये दोनों मान के ही रूप हैं। परन्तु जहां अहंकार को त्यागना श्रेयस्कर है वहीं आत्म-सम्मान को संजोना भी वांछनीय है।

मान कषाय के उद्रेक से व्यक्ति में स्वार्थ की भावना गहन हो जाती है। वह दूसरों को तुच्छ और हीन समझने लगता है और अपनी ही बात को सर्वोपरि मानता है। पारिवारिक जीवन में और सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में सत्ता के लिए जो संघर्ष होता है उसमें मान कषाय की कुप्रवृत्ति का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

माया

माया का सामान्य अर्थ ढोंग या hypocrisy किया जा सकता है। वास्तविकता में जो नहीं है वह दिखना, स्वयं को अवास्तविक रूप में प्रदर्शित और प्रचारित करना ताकि अन्य लोग उसके वास्तविक रूप को न पहचान सकें, उसे सज्जन, सत्यनिष्ठ और सद्भाव वाला समझें जो कि वह है नहीं, का बोध माया से होता है। मानव स्वभाव के विभिन्न रूप विविध प्रकार के मायाचार में परिलक्षित होते हैं। इसमें मूल भावना यह रहती है कि हम किसी प्रकार दूसरे को धोखा दें, उसे वास्तविकता न जानने दें, किसी प्रकार भ्रम का आवरण बनाये रखें और भ्रम का बराबर पोषण करते रहें। इस प्रकार के आचरण को मायाचार का नाम सामान्य बोलचाल में दिया जाता है।

समाज में जो कलुषता का वातावरण दिखाई पड़ता है उसमें माया का विशेष प्रभाव है। कभी-कभी माया का यह रूप किसी व्यक्ति विशेष में घनीभूत भी हो जाता है। समाज को विच्छिन्न करने वाले विभिन्न प्रकार के कार्यों में जो व्यक्ति संलग्न रहते हैं उनमें यह माया रूप विशेष प्रभाव रखता है। धर्म और राजनीति के क्षेत्र में माया का रूप सामान्यतया दृष्टिगत होता है।

लोभ

लोभ या लालच (greed) व्यक्ति के अपनी परिस्थिति से असंतोष को सामान्यतः सूचित करता है। हमारे पास जितना और जो कुछ है उसमें सुकून या संतुष्टि की अनुभूति न करना वरन् दूसरे की समृद्धि को देखकर ईर्ष्या भाव से ग्रसित होना, और सामान्य रूप से सुख-सुविधा सम्पन्न होते हुये भी और अधिक धन-सम्पत्ति व सत्ता की हविस होना, लोभ का सामान्य लक्षण है। लोभ के वशीभूत होकर व्यक्ति कुछ भी करने के लिये तैयार हो जाता है, अपनी मर्यादा और आत्म-सम्मान को भूल जाता है, अनैतिक अथवा आपराधिक कृत्य को करने में भी संकोच नहीं करता है। उसके लिए भ्रष्ट आचरण कोई अवरोधक नहीं है। उसका एक मात्र ध्येय अपने स्वार्थ की सिद्धि और अपनी समृद्धि एवं प्रभाव का पोषण करना है। इसलिए **लोभ** को **पाप का बाप** कहा गया है।

क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषाय हमारे मन-मस्तिष्क को अतिशय रूप से प्रभावित करते हैं। ये अप्रयास भी हमें उद्वेलित कर सकते हैं। स्वयं पर नियंत्रण और अनुशासन इसके परिमार्जन का एक उपाय है। संतुलित सोच इसमें सहायक हो सकती है।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

विजयनगर साम्राज्य

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

विधर्मी विदेशी मुसलमानों ने भयंकर आक्रमणों और निर्दयतापूर्ण अत्याचारों द्वारा समस्त उत्तरापथ पर अधिकार कर लेने के उपरान्त गुजरात के बघेलों, देवगिरि के यादवों, वारंगल के काकातीयों और अन्त में द्वारसमुद्र के होयसलों की राज्य शक्ति का भी अन्त कर दिया था, किन्तु वे दक्षिणापथ, विशेषकर कर्णाटक, के निवासियों की देशभक्ति और स्वातन्त्र्य-प्रेम का अन्त नहीं कर सके। होयसल राज्य की समाप्ति होने भी नहीं पायी थी कि विजयनगर राज्य के रूप में वह स्वातन्त्र्य-प्रेम नवीन बल और उत्साह के साथ प्रस्फुटित हो उठा। मध्यकाल का विजयनगर साम्राज्य भारतीय राजनीति की अत्युत्कृष्ट एवं अनुपम सृष्टि थी।

कर्णाटक के प्राचीन सातवाहन, नाग, गंग, कदम्ब, पश्चिमी चालुक्य, राष्ट्रकूट, उत्तरवर्ती चालुक्य और होयसल प्रभृति राजवंशों की अविच्छिन्न सीधी परम्परा में उत्पन्न विजयनगर के राजवंश ने अपने-आपको उस परम्परा का सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध किया। राजनीति, शासन-व्यवस्था, जीवन और व्यवहार में उन्हीं की नीति को सुविकसित रूप में अपनाया, राज्य में प्रचलित विभिन्न धर्मों के प्रति वैसी ही समदर्शिता, सहिष्णुता एवं सदाशयता का परिचय दिया और संस्कृति के साहित्य, कला, लोकजीवन आदि विभिन्न अंगों का बिना भेदभाव के उदारता एवं उत्साहपूर्वक पोषण एवं विकास किया।

जिन विषम परिस्थितियों के बीच विजयनगर साम्राज्य की स्थापना, निर्माण और विकास हुआ उन पर ध्यान देने से उसके नरेशों के कार्य और सफलता का महत्व और अधिक हो उठता है। उनके प्रतिद्वन्द्वी उनके स्वदेशवासी, सजातीय, साधर्मी पड़ोसी राजे-महाराजे नहीं थे वरन् वे विदेशी विधर्मी क्रूर आक्रान्ता थे जो न केवल तत्कालीन भारत की स्वतन्त्रता और धन का अपहरण करने वाले एक राजनीतिक शत्रु थे बल्कि भारतीयों के धर्म, संस्कृति, आचार-विचार और जीवन के भी भयानक शत्रु बने हुए थे।

इस भारत गौरव साम्राज्य के **मूल संस्थापक** संगम नामक एक छोटे से सरदार के पांच वीर पुत्र थे। १३८५ ई. के एक जैन शिलालेख में इन्हें 'यादव राजवंशोद्भूत' कहा है अतः देवगिरि के सुएन और द्वारसमुद्र के होयसलों की भांति संगम के पुत्र भी यदुवंशी क्षत्रिय थे। संगम और उसके पुत्र यद्यपि होयसलों के अति साधारण श्रेणी के छोटे से सामन्त और उसकी सीमान्त चौकियों के रक्षक थे, किन्तु साथ ही वे स्वदेश-भक्त, स्वतन्त्रता-प्रेमी, वीर, साहसी और महत्वाकांक्षी भी थे। मुसलमानों के

आक्रमण न होते तो स्यात् ये गुण सुषुप्त ही रह जाते या वे कोई होयसल आदि जैसा राज्य स्थापित भी कर लेते। किन्तु देखते-देखते ही एक दशक के भीतर दक्षिण भारत की तीनों महान राज्य शक्तियों का अन्त हो गया। इन वीरों का रक्त उबल उठा, ये सचेष्ट हो गये और पांचों भाई मुसलमानों के आक्रमण की भीषण बाढ़ को स्तम्भित करने के लिए जुट पड़े। इसमें सन्देह नही कि उनका यह उपक्रम विशेष रूप से द्वारसमुद्र और संभवतया वारंगल का भी मुसलमानों द्वारा पतन किये जाने की प्रतिक्रिया था।

इन पांचों भाइयों ने दक्षिण देश के विभिन्न सामन्त सरदारों का, जो उत्तर दिशा से आने वाले इस सर्वसंहारक बवण्डर से क्षुब्ध थे, अपने नेतृत्व में संगठन किया और देश से मुसलमानों को निकाल बाहर करने में जुट गये। इस प्रयत्न में वे मुसलमानों के हाथों बन्दी हुए, मुसलमान भी बना लिये गये, किन्तु छूट निकले और फिर स्वधर्म में दीक्षित होकर दुगुने उत्साह से कार्य-सिद्धि में जुट गये। किन्तु कार्य सरल न था, दिल्ली के सुलतान शक्तिशाली थे और स्थान-स्थान में उनके मुसलमान सूबेदार अर्धस्वतन्त्र शासकों के रूप में निरंकुश शासन करने लगे थे। एक केन्द्रियित राज्य-शक्ति का निर्माण करना प्रथम आवश्यकता थी। अतः थोड़ा सा संगठन और शक्ति संचय कर लेने के उपरान्त १३३६ ई. में तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर प्राचीन दुर्ग अनेगुण्डी के सामने हम्पी नामक स्थान को इन भाईयों ने अपना केन्द्र बनाया और **विजयनगर** की नींव डाली। १३४३ ई. के लगभग यह विशाल सुदृढ़ एवं सुन्दर नगरी विजयनगर, विद्यानगर या विद्यानगरी बनकर तैयार हुई और १३४६ ई. में स्वतन्त्र **विजयनगर राज्य** की वहां स्थापना हुई। इस बीच में तीन भाईयों की राज्य स्थापना के लिये किये गये संघर्षों में मृत्यु हो चुकी प्रतीत होती है, शेष दो, हरिहर और बुक्काराय, जीवित थे, अतः राज्य की वास्तविक स्थापना के समय ज्येष्ठ भ्राता हरिहरराय प्रथम (१३४६-१३६५ ई.) विजयनगर राज्य का प्रथम अभिषिक्त नरेश हुआ।

विजयनगर की स्थापना से प्रेरित होकर अगले ही वर्ष १३४७ ई. में दिल्ली के सुलतान के हसन नामक एक तुर्की सरदार ने, जो प्रारम्भ में गंगू नाम के किसी ब्राह्मण का सेवक रहा बताया जाता है, दक्षिण देश के उत्तरी भाग में दौलताबाद (देवगिरि) पर अधिकार करके और कुल्बर्गा को राजधानी बनाकर **बहमनी राज्य** की नींव डाली। इस प्रकार प्रारम्भ से ही विजयनगर का प्रतिद्वन्द्वी और निकट शत्रु यह मुसलमानी राज्य हुआ और आगामी दो शताब्दियों तक इनमें परस्पर चलने वाला युद्ध संघर्ष ही तत्कालीन दक्षिण भारत का राजनीतिक इतिहास है।

हरिहर प्रथम का प्रतिद्वन्द्वी मुहम्मद प्रथम था, दोनों के बीच अनेक युद्ध हुए जिनमें मुसलमानों की नृशंसता के कारण लाखों व्यक्तियों का संहार हुआ। महाराज हरिहर का प्रधानमंत्री एवं दण्डाधिनायक (प्रधान सेनापति) जैन वीर बैच या बैचप्प था जो प्रभाव, उत्साह और मंत्र इन तीनों शक्तियों से युक्त था और रणक्षेत्र में राजा हरिहर का तीसरा हाथ था।

हरिहर और उसके वंशजों का राज्यधर्म सामान्यतः हिन्दुधर्म था। प्रजा में अधिकांश भाग जैन, उनके पश्चात् श्रीवैष्णव और फिर लिंगायत या वीरशैव और कुछ सद्शैव थे किन्तु विजयनगर-नरेश प्रारम्भ से ही सिद्धान्ततः सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु, समदर्शी और उदार थे। स्वयं राजधानी विजयनगर (हम्पी या प्राचीन पम्पा) के वर्तमान खण्डहरों में वहां के जैन मंदिर ही सर्व प्राचीन हैं, वे नगर के सर्वश्रेष्ठ केन्द्रीय स्थान में स्थित हैं और अनेक विज्ञ विद्वानों के मत से उनमें से अनेक ऐसे हैं जो वहां विजयनगर की स्थापना के पूर्व ही विद्यमान थे। इससे स्पष्ट है कि यह स्थान बहुत पहले से ही एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था।

हरिहर के शासनकाल में १३५५ ई. में भोगराज नामक एक प्रतिष्ठत राजपुरूष ने रायदुर्ग में अनन्त जिनालय की स्थापना करके अपने गुरु नन्दिसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ के अमरकीर्ति के शिष्य माघनन्दि सिद्धान्त को समर्पित किया था। इस राजा के अन्तिम वर्ष १३६५ ई. में कम्पा के जैन गुरु मल्लिनाथ को दान दिया गया था। हरिहर का पुत्र राजकुमार विरूपाक्ष ओडेयर १३६३ ई. में मालेराज प्रान्त का शासक था। उस समय उसकी राजधानी अरग में पार्श्वनाथ बसदि नामक एक प्राचीन जिनमंदिर से सम्बन्धित भूमि की सीमा के प्रश्न पर जैनों और वैष्णवों में विवाद हुआ। राज्य की ओर से प्रान्तीय सभाभवन में महाप्रधान नागन्न तथा प्रान्त के प्रमुख सामन्त सरदारों, जन नेताओं और जैन एवं वैष्णव मुखियाओं के समक्ष राजकुमार ने सर्वसम्मति से जैनों के पक्ष को न्यायपूर्ण घोषित किया, प्राचीन शासनों में जो सीमाएं निर्धारित थीं वे ही स्थिर रखी गयीं और एक शिलालेख में अंकित करवा दी गयीं। इस काल के प्रमुख जैन विद्वान महान वादी सिंहकीर्ति, **धर्मनाथ पुराण** के कर्ता उभयभाषाचक्रवर्ती बाहुबलि पण्डित, **गोम्मटसार वृत्ति** के कर्ता केशववर्णी और धर्मभूषण भट्टारक थे। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **खगेन्द्रमणिदर्पण** के प्रणेता संगरस प्रथम भी इसी राज्यकाल में हुए हैं।

(इतिहास-मनीषी डॉ० ज्योति प्रसाद जैन के सुप्रसिद्ध 'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि' से संकलित। वर्तमान में राजनीतिक स्वार्थ पोषित मुस्लिम आतंक-आक्रामकता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवादी संगठन की प्रेरणा हरिहर और बुक्का का सत्प्रयास दे सकता है। - सम्पादक)

भगवान महावीर की निर्वाण स्थली पावा

- श्री अजित प्रसाद जैन

वर्तमान में राजगिर-नालन्दा के निकट स्थित तीर्थक्षेत्र पावापुरी भगवान महावीर की निर्वाण स्थली के रूप में बहुमान्य है। यहां सुप्रसिद्ध जलमन्दिर सहित अनेक भव्य मंदिरों व विशाल धर्मशालाओं का निर्माण दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही आम्नायों द्वारा हुआ है, तथापि इस क्षेत्र का इतिहास कुछ अधिक पुराना नहीं है। ईसा की प्रथम सहस्राब्दि की कुछ शताब्दियों में भयंकर धार्मिक द्वेष एवं अराजकता के दौर में बिहार प्रदेश में तत्कालीन शासकों के समर्थन से धर्मोन्मादियों द्वारा जैन धर्मावलम्बियों का व्यापक संहार किया गया था तथा बचे-खुचे जैनी या तो जंगलों में भाग कर वन्य जीवन बिताने को मजबूर हो गए थे (जिनके वंशज आज पिछड़े आदिवासी सराक कहलाते हैं) या अन्य प्रदेशों को पलायन कर गये। आज भगवान महावीर या उनके पूर्ववर्ती कई तीर्थंकरों की मुख्य विहार एवं धर्म प्रचार भूमि बिहार में कदाचित् ही कोई ऐसा जैन परिवार मिलेगा जो यह दावा कर सके कि वह इस भूखण्ड का ही मूल निवासी है।

८०० वर्ष पूर्व सौराष्ट्र से श्वेताम्बर श्रीसंघ सहित तीर्थ यात्रा पर निकले एक आचार्य ने भगवान महावीर के कल्याणकों की पवित्र भूमियों को चिन्हित करने का प्रयास किया था। उन्होंने राजगिर के समीप ही पुरी नामक गांव के निकट अनुमान से स्थापना-निक्षेप सिद्धान्त का अवलम्बन लेकर पावापुरी-निर्वाण-तीर्थक्षेत्र की स्थापना कर दी। इस क्षेत्र के निकट का गांव आज भी केवल पुरी कहलाता है। कदाचित् ये आचार्य श्री अभयदेवसूरि जी थे, जिनके द्वारा वि.सं. १२६० में प्रतिष्ठित कराए गए प्राचीन चरण आज भी जल मंदिर में विराजमान हैं और उभय समाज द्वारा बड़े भक्ति भाव से पूजे जाते हैं। जल मंदिर का मूल निर्माण इन्हीं आचार्य श्री की प्रेरणा से हुआ प्रतीत होता है।

भगवज्जिनसेनाचार्य (८वीं शती ई०) ने भगवान महावीर के निर्वाण के प्रसंग में लिखा है -

जिनेन्द्र वीरोऽपि विबोधसंतत समन्ततो भव्य समूह संततिम् प्रपद्य पावा नगरी मनोहरोद्यान तदीयेके (महापुराण, ६६/१५)

(भगवान महावीर निरन्तर सब ओर के भव्य समूह को संबोध कर पावा नगर पहुंचे और वहां के मनोहरोद्यान नामक वन में विराजमान हो गये।) प्राचीन पुराणकारों

ने नगर का नाम **पावा** ही दिया है, **पावापुरी** नहीं। **कल्पसूत्र** के अनुसार भगवान महावीर पावा में राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला में विराजे थे। राजा हस्तिपाल या तो मल्ल गणराज्य के अधिपति थे या फिर वे मल्लों की गज सेना के नायक कोई मल्ल गणराजा थे। **कल्पसूत्र** में निर्वाण स्थल के लिए 'पावाए मज्झिमाए' शब्दों का प्रयोग किया गया है जिससे तात्पर्य मध्य देश की पावा होता है (जो यह पावा थी) या फिर 'पावा के मध्य में' भी हो सकता है। 'मज्झिमाए' का प्रयोग कदाचित् यह स्पष्ट करने के लिये किया गया होगा कि यद्यपि भगवान सामान्यतया नगरों के बाहर वन-उद्यानों में विराजते थे, इस बार वे पावा के मध्य में स्थित रज्जुकशाला में विराजे थे। भगवान के निर्वाण के समय वहां ६ मल्ल व ६ लिच्छवी= १८ गणराजा और काशी-कोसल के राजा उपस्थित थे। कदाचित् उस समय पावा में गणराजाओं का कोई महासम्मेलन चल रहा होगा जिसमें भाग लेने के लिये ये गणराजा आए हुए होंगे, या फिर वे भगवान की दिव्य देशना का श्रवण करने के लिए ही आए होंगे। **कल्पसूत्र** के उपर्युक्त उल्लेखों तथा प्राचीन बौद्ध साहित्य में निगंठ ज्ञातपुत्त (भगवान महावीर) के शरीरान्त के प्रसंग से आये उल्लेखों से यह असंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है कि भगवान का निर्वाण मल्लों की राजनगरी पावा में ही हुआ था जो उनकी दूसरी नगरी कुशीनारा (जहां भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था) से १२ मोल दक्षिण-पूर्व में थी।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के प्रमुख अधिकारी व उनके सहायक कारलाइल ने सन् १८७६-७७ में पावा की भौगोलिक स्थिति तथा पुरातात्विक उत्खनन-शोधखोज के आधार पर मल्लों की पावा के पुरावशेष वर्तमान कुशीनगर जिले में कुशीनगर से १२ मील दक्षिण-पूर्व फाजिल-नगर साठियांव-डीह के विस्तृत क्षेत्र में फैले प्राचीन टीलों के नीचे दबे चिन्हित किये थे। दिगम्बर जैन समाज ने इस खोज को तर्क-युक्त स्वीकार कर यहाँ दिगम्बर जैन पावानगर सिद्ध तीर्थक्षेत्र की स्थापना कर दी है तथा सन् १९९६ में यहां पंच कल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न की जा चुकी है। पावानगर तीर्थक्षेत्र को भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी भी मान्य कर चुकी है तथा इस क्षेत्र की प्रबन्धन कमेटी उससे सम्बद्ध है। इस जनपद के लोक-नेता संत स्व. बाबा राघव दास ने यहां सन् १९४५ में भगवान महावीर की पुण्यस्मृति में 'भगवान महावीर इन्टर कॉलेज' की स्थापना की थी जिसे राज्य सरकार ने भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के सुअवसर पर डिग्री कालेज के रूप में उन्नत कर उन महामानव के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। कुशीनगर-पावानगर के आस-पास के क्षेत्र में मल्ल क्षत्रियों के वंशज आज भी बड़ी

शेष पृष्ठ ५३ पर...

तथाकथित वीर निर्वाणभूमि 'पावा' की प्राचीनता

- डॉ० शिवप्रसाद

भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पावा है, इस विषय में कहीं कोई मतभेद नहीं है; परन्तु यह कहां स्थित है, इस बारे में मत वैभिन्य है। अनेक श्वेताम्बर और दिगम्बर मतावलम्बी नालन्दा जिले में स्थित बिहारशरीफ नामक स्थान से सात मील दूर स्थित पोखरपुर, दशरथपुर और पुरी नामक ग्रामों के मध्य स्थित भूभाग को पावापुरी मानते हैं। यहां तालाब के मध्य एक भव्य मंदिर बना हुआ है जिस पर जाने के लिये लाल पत्थरों का सुन्दर सेतु निर्मित है। जल मंदिर में भगवान महावीर की चरणपादुका है, जो प्राचीन मानी जाती है। इस पर कोई लेख उत्कीर्ण नहीं है, फिर भी यह ३सौ-४सौ वर्ष प्राचन मानी जाती है। इन चरणों के अगल-बगल सुधर्मा और गौतमस्वामी के चरण स्थापित हैं।

जल मंदिर के बाहर एक समवशरण मंदिर भी है, जिसमें भगवान महावीर की चरणपादुका है जो जलमंदिर वाली चरणपादुका से प्राचीन मानी जाती है। इस पर भी कोई लेख उत्कीर्ण नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह पादुका अन्यत्र से यहां लाकर स्थापित की गयी है।

निकटवर्ती पुरी ग्राम में कुछ खंडित जैन प्रतिमायें हैं। इनमें से एक प्रतिमा पर वि.सं. १२६० का लेख उत्कीर्ण है। श्री पूरनचन्द नाहर ने इसकी वचना दी है, जो इस प्रकार है :

"संवत् १२६० ज्येष्ठ सुदि-२ रेनुमा (?) चोरकिनात्म श्रेयोऽर्थं श्री महावीर विंवं कारितं प्रतिष्ठितं च श्री अभयदेवसूरिभिः।"

पावापुरी के समीप गुणावा ग्राम में स्थित मंदिर में वि.सं. १२६८ की दो प्रतिमायें हैं। गुलाब चन्द्र चौधरी, शैलनाथ चतुर्वेदी, योगेन्द्र मिश्र, कन्हैयालाल सरावगी आदि विद्वानों की मान्यता है कि उक्त प्रतिमायें तीर्थ की प्रतिष्ठा हेतु बाहर से लाकर प्रतिष्ठापित की गयी हैं।

यह सत्य है कि इन प्रतिमाओं पर प्रतिष्ठा स्थान आदि का कोई उल्लेख नहीं है और यह भी कि एक स्थान पर प्रतिष्ठापित जिन प्रतिमाओं को अन्यत्र स्थापित करने की परम्परा जैन धर्मावलम्बियों में रही है जो प्रायः आज भी प्रचलित है। इस आधार पर क्या यही माना जाये कि यह तीर्थ अर्वाचीन है और यहां प्राचीन कुछ भी नहीं है और जो है भी वह बाहर से लाकर यहां प्रतिष्ठापित किया गया है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यहाँ जो भी प्राचीन सामग्री है उसे यहाँ लाने का उद्देश्य क्या मात्र यही था कि लोग इसे प्राचीन स्थान मानें?

यह तीर्थस्थान वस्तुतः कितना प्राचीन है यह जानने के लिये साहित्यिक साक्ष्यों का भी अध्ययन अपरिहार्य है। जैन आगमों में वीर निर्वाण भूमि की चर्चा नहीं है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख **पर्युषणाकल्प** अपरनाम **कल्पसूत्र** में है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भिक भाग ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी का माना जाता है। वीर निर्वाण संवत ६८० अथवा ६६३ में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने इसे जिस रूप में व्यवस्थित किया, उसी रूप में आज यह उपलब्ध है। **कल्पसूत्र** में वीर निर्वाण का जो प्रसंग उपस्थित किया गया है वह बाद में रची गयी चूर्णियों, भाष्यों, टीकाग्रन्थों, स्तवनों, गीतों आदि में पल्लवित होता रहा।

सूत्र १२२ में उल्लेख है कि विहार करते हुये भगवान महावीर पावापुरी आये और यहाँ राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला में अपना ४२वां चातुर्मास व्यतीत किया। सूत्र १२३ में पावा को 'पावा मज्झिमा' बतलाते हुये कहा गया है कि वर्षावास के सातवें पक्ष में श्रमण महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए। सूत्र १२४ के अनुसार उस रात्रि में देवताओं के आगमन के कारण खूब प्रकाश हुआ। सूत्र १२७ में कहा गया है कि जब महाश्रमण कालधर्म को प्राप्त हुए तो उस समय ६ मल्ल और ६ लिच्छवि राजा उनके अंतिम दर्शनार्थ वहां उपस्थित हुए और उन्होंने यह कह कर दीपोत्सव मनाया कि आध्यात्मिक ज्योति अब अस्त हो गयी है अतः पौद्गलिक द्रव्यों से हम प्रकाश करें। इसी ग्रन्थ के १४७वें सूत्र में कहा गया है कि अवसर्पिणी के पांचवें आरे के व्यतीत होने में तीन वर्ष आठ माह और एक पक्ष शेष था तब **'पावा मज्झिमा'** के राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला (शुल्कशाला) में स्वाती नक्षत्र के प्रायूष काल में भगवान ने सुखविपाक, दुःखविपाक और **उत्तराध्ययनसूत्र** का उपदेश दिया।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि **कल्पसूत्र** के संकलनकर्ता ने इस ग्रन्थ के १२२वें सूत्र में अंतिम चातुर्मास का उल्लेख कर शेष सूत्रों में पावा-मज्झिम लिखकर वहां अंतिम उपदेश, निर्वाण एवं दीपोत्सव आदि घटनाओं का प्रसंग उपस्थित कर यह स्पष्ट कर दिया कि **पावा** और **मज्झिमा पावा** एक ही हैं।

आवश्यक निर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य आदि में वीर निर्वाण स्थल का नाम पावा दिया गया है जबकि **आवश्यक चूर्णि, आवश्यक निर्युक्ति** (गाथा ५२६) और **कल्पसूत्रवृत्ति** (पृष्ठ १७१) में 'मज्झिमा', 'मज्झिमा नगरी' और 'मज्झिमा पावा' नाम के एक नगर का उल्लेख है और कहा गया है कि भगवान ने ऋजुवालिका के तट पर कैवल्य प्राप्त करने के पश्चात यहां आकर वैशाख शुक्ल ११ को पूर्वान्ह में सामायिक का प्रकाश किया।

आचार्य हेमचन्द्र ने **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित** में महावीर के चरित्र के अन्तर्गत अपापापुरी (पावापुरी) का पौराणिक ढंग से विवरण प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार महावीर विहार करते हुये अपापानगरी पहुँचे। इन्द्रों ने वहाँ समवशरण की

रचना की। भगवान ने अपनी आयु क्षीण जानकर अंतिम देशना दी जिसे सुनने के लिये अपापापुरी का राजा पुण्यपाल (हस्तिपाल) वहां आया। इन्द्र द्वारा प्रश्न पूछने पर भगवान का उपदेश प्रारम्भ हुआ। उपदेश की समाप्ति पर राजा ने पिछली रात्रि में देखे गये स्वप्नों का फल पूछा और फल जानकर दीक्षा ले ली तथा तपस्या कर मोक्ष प्राप्त किया। इसके पश्चात गौतम के पूछने पर भगवान के मुख से पालक, नन्द, मौर्य आदि राजवंशों का वर्णन कहलवाया गया है। अपना अंतिम समय जानकर उन्होंने (महावीर ने) गौतम को दूसरे ग्राम में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये भेजा। उधर गौतम रवाना हुये और इधर महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। देवों ने दाहसंस्कार कर वहाँ रत्नमय स्तूप की रचना की।

हेमचन्द्र द्वारा वर्णित उक्त विवरण को खरतरगच्छ की लघु शाखा के आचार्य जिनप्रभसूरि ने स्वरचित **कल्पप्रदीप** अपरनाम **विविधतीर्थकल्प** में प्राकृत भाषा में गद्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है और कहा है कि 'मज्झिमा पावा' का नाम 'अपापुरी' था जिसे इन्द्र ने 'पावापुरी' कर दिया। उन्होंने महावीर के जीवन से सम्बन्धित एक घटना, जिसके अनुसार एक ग्वाले द्वारा उनके कानों में कीलें ठोंक दी गयी थीं, का भी उल्लेख किया है। कानों से खरग वैद्य ने जब शलाका निकाली तो दर्द होने के कारण महावीर के मुख से चीख निकल गयी जिससे सामने स्थित पहाड़ के दो टुकड़े हो गये। ये पर्वत आज भी दिखाई देते हैं।

उक्त वर्णन से यह बात पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि वर्तमान पावापुरी जिनप्रभसूरि के समय १४वीं शताब्दी में अस्तित्व में रही। जहाँ अनेक विद्वान यहाँ से प्राचीन मंदिर, जिनप्रतिमायें आदि न मिलने के कारण इसे ३सौ-४सौ वर्ष प्राचीन मान रहे थे वहीं **कल्पप्रदीप।/विविधतीर्थकल्प** के आधार पर यह तथ्य प्रमाणित है कि वीर-निर्वाण-भूमि के रूप में यह स्थान प्रसिद्ध हो चुका था।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह तीर्थ कितना प्राचीन माना जाये। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है 'पुरी' ग्राम स्थित जिनालय में वि. सं. १२६० की महावीर की प्रतिमा रखी हुई है और इस पर उत्कीर्ण लेख में प्रतिमा प्रतिष्ठापक के रूप में अभयदेवसूरि का नाम उत्कीर्ण है। अभयदेवसूरि नामक कई आचार्य श्वेताम्बर परम्परा में हो चुके हैं। वि. सं. १२७८ में **जयन्तविजयकाव्य** के रचनाकार खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीय शाखा के अभयदेवसूरि और उक्त प्रतिमालेख में उल्लिखित अभयदेवसूरि को नामसाम्य और सामयिकता के कारण एक ही व्यक्ति मानने में कोई बाधा नहीं आती। इस काल में किसी अन्य गच्छ या उसकी किसी शाखा में इस नाम के कोई अन्य आचार्य भी नहीं हुए हैं। इस आधार पर महावीर की उक्त प्रतिमा के प्रतिष्ठापक अभयदेवसूरि और रुद्रपल्लीय शाखा के अभयदेवसूरि एक ही व्यक्ति मालूम होते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि खरतरगच्छ की यही एक ऐसी शाखा है

जो उत्तर प्रदेश में लखनऊ और फैजाबाद के मध्य स्थित रुद्रपल्ली (वर्तमान रुदौली) नामक स्थान से अस्तित्व में आयी। इस शाखा के चतुर्थ पट्टधर अभयदेवसूरि द्वारा वीर-निर्वाण-भूमि के रूप में मान्य स्थल पर क्या महावीर की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करना नितान्त असम्भव है? यदि नहीं तो हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि उक्त प्रतिमा यहाँ स्थापित नहीं थी। यदि उक्त लेख में प्रतिष्ठा स्थान का नाम दे दिया गया होता तो ऐसा विवाद ही नहीं उठता। अनेक जैन लेख ऐसे हैं जिनमें कहीं प्रतिमा प्रतिष्ठा कर्ता मुनि ने अपने गुरु का नाम नहीं दिया है, कहीं अपने गच्छ का नाम नहीं दिया है, कहीं प्रतिष्ठा सम्वत् की चर्चा नहीं है तो कहीं प्रतिष्ठा स्थान का उल्लेख नहीं है। ऐसी स्थिति में उसमें उल्लिखित आचार्यों की पहचान करना प्रायः असंभव तो नहीं, परन्तु कठिन अवश्य हो जाता है। यदि उक्त तथ्य को हम स्वीकार करें तो विक्रम सम्वत् की १३वीं शती के मध्य तक इस तीर्थ स्थान की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है।

डॉ० शैलनाथ चतुर्वेदी, डॉ० योगेन्द्र मिश्र, डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी, श्री कन्हैयालाल सरावगी आदि विद्वानों के अनुसार वीर निर्वाण भूमि के रूप में मान्य 'पावापुरी' **कल्पसूत्र** में उल्लिखित राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला वाली पावा नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में उन्होंने बौद्ध साहित्य में उल्लिखित विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि वीर निर्वाण भूमि पावा उत्तर प्रदेश राज्य के देवरिया जिले में अवस्थित सठियांव-फाजिलनगर नामक स्थान है। डॉ. ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव ने सठियांव-फाजिलनगर को 'पावा' न मानकर इसी के निकट स्थित वीर भारी नामक स्थान को प्राचीन पावा स्वीकार किया है।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि प्राचीन पावा क्यों, कब और कैसे विलुप्त हुई? यह इतिहास सिद्ध है कि ६वीं-७वीं शताब्दी से पूर्वी भारत में जैनों की जनसंख्या कम होने लगी और धीरे-धीरे पश्चिमी भारत के जैन धर्मानुयायियों से उनका सम्पर्क कम होते-होते टूट गया। पूर्वी भारत में ८वीं से ११वीं शताब्दी तक पालों और उसके पश्चात् मुस्लिम शासन प्रारम्भ होने के पूर्व तक सेनों का शासन रहा। उक्त राजवंशों ने क्रमशः बौद्धों और वैदिक धर्मावलम्बियाँ को प्रश्रय दिया। इनके समय में जैन धर्म का तेजी के साथ ह्रास होने लगा। जैन धर्मावलम्बियों की संख्या कम होती गयी और जो बचे भी थे उनमें न तो कोई विमल के समान दण्डनायक अथवा वस्तुपाल-तेजपाल के समान मंत्री था और ना ही समराशाह के समान अति सम्पन्न एवं राज्यमान्य श्रेष्ठी ही था। ऐसी स्थिति में यहाँ के प्राचीन तीर्थस्थानों की पहचान बनाये रखना यहाँ के जैनों के लिये प्रायः असंभव हो गया । यहाँ अनेक स्थल जैनों

से शून्य हो गये और उनके तीर्थ-मंदिरादि पर अन्य धर्मावलम्बियों ने अधिकार कर लिया। ८वीं से १२वीं शताब्दी तक सम्पूर्ण उत्तरी भारत में सत्ता/साम्राज्य के लिये संघर्ष का युग माना जाता है। केन्द्रीय सत्ता के अभाव के कारण प्रायः संघर्ष की स्थिति बनी रही। जब पुनः मुस्लिम शासन काल में केन्द्रीय सत्ता एक प्रकार से स्थापित हो गयी तो शताब्दियों से प्रायः बन्द पड़े व्यापारिक मार्ग भी खुल गये और निर्बाधरूप से पश्चिमी भारत से व्यापारी पूर्व की ओर आने लगे। पश्चिमी भारत के जैन मतावलम्बियों को अपने अनेक तीर्थों की जो प्रायः पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में स्थित थे, नामों की स्मृति थी और इसी आधार पर उन्होंने अपने विभिन्न तीर्थों की अनुमान के आधार पर कल्पना कर ली और वहां उनके निरन्तर सम्पर्क में बने रहने के कारण तेजी से विकास हुआ। नूतन तीर्थों पर नवनिर्माण, जीर्णोद्धार, तीर्थयात्रा संघ, पूजा-प्रतिष्ठा आदि धार्मिक क्रियाकलापों का जो क्रम एक बार चला वह आज भी जारी है। इस प्रकार अनेक विलुप्त तीर्थ स्थान अस्तित्व में आ तो गये परन्तु पर्याप्त जानकारी के अभाव में उनकी भौगोलिक स्थिति में अन्तर आ गया। वीरजन्मभूमि **कुण्डग्राम** और निर्वाणभूमि **पावा** इसका ज्वलंत उदाहरण है।

संदर्भ -

१. **निर्वाण भूमि पावा**, संपा. अनन्त प्रसाद जैन, गोरखपुर, १९७३ ई.

२. **जैनलेख संग्रह**, भाग-२, संपा. पूरनचन्द नाहर, कलकत्ता, १९२७ ई. लेखांक २०२९

३. **पावा समीक्षा**, सारण, १९७२ ई.

४. डॉ. शिवप्रसाद : 'नागेन्द्र गच्छ का इतिहास', **श्रमण**, वर्ष ४६, अंक-७ - ९, पृष्ठ २०; "खरतरगच्छ रुद्रपल्लीय शाखा का इतिहास," **श्रमण**, वर्ष ५३, अंक ७-१२, पृष्ठ ८१

५. **विविधतीर्थकल्प**, संपा. मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ६, शांतिनिकेतन, १९३६ ई.

६. डॉ. ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव : "महावीर निर्वाण भूमि पावा," **श्रमण**, वर्ष ५१, अंक १-६, पृष्ठ ६३-६५

७. **तित्थयर**, संपा, श्रीमती लता बोथरा, वर्ष २२, अंक अप्रैल १९९८, पूर्वांचल में सराक संस्कृति और जैन धर्म विशेषांक

- पोस्ट-डाक्टरेट फैलो, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद,

द्वारा- मनीष जनरल स्टोर्स,

चौक, वाराणसी-२२१००८

The Jain Literature in Hindi

- **Dr. Usha Mathur, Ph.D., D.Litt.**

Hindi is the literary norm over a vast expanse of area in western, northern, central and eastern India. The Hindi-speaking territory comprises Rajasthan, Haryana, Himachal Pradesh, Delhi, Uttar pradesh, Uttarakhand, Madhya Pradesh and Bihar.The various dialects spoken in the region have often assumed literary forms, for instance, **Awadhi** and **Braja**, but during the last two hundred years or so the **Khari Boli** has been universally accepted as the standard literary form throughout the Hindi-speaking world.

The beginnings of the Hindi literature are traced back to about one thousand years ago. The early literary form of Hindi is supposed to have emerged from **Apabhramsa**. The early compositions were mostly in poetry, and were mainly based on traditional lore. The classical classification of Hindi literature distributes it into Tales of the Heroes, Devotional, Prosodical and Amorous, and Modern. The religious tenor of the mediaeval Hindi literature is too well known, but the emphasis has been largely on the study of Rama and Krishna themes.

Mishra Bandhu and Ramchandra Shukla took upon themselves to systematically connect the links by exploring old manuscripts, and provided a base for the study of historical development of Hindi literature. It was, however, felt as early as 1917 that the exploratory work was not comprehensive and Nathu Ram Premi drew pointed attention to Jain literature in Hindi in his learned address to the Seventh Hindi Sahitya Sammelan. Kamta Prasad Jain, Dr. Nemi Chandra Shastri and Dr. Jyoti Prasad Jain took up the task of presenting a systematic study of Jain literature in the early 1950's. Since then much work has been done and several research dissertations have also been admitted and published.

The Hindi-speaking area has had a good following of Jainism. In modern times Jainendra Kumar is the doyen of Hindi literature. But these are two different things that a particular author happens to be a follower of Jainism or that a particular author writes on the Jain literature, it means lliterature drawing upon Jain themes - the Jain puranic or traditional lore, the Jain philosophical concepts, the Jain devotional poetry, and the like. It is not always necessary that the author himself be a Jain, for instance, Anup Sharma wrote the **Vardhamana-Kavya** on the life of Lord Mahavira.

The information brought to light during the past three decades is vast enough, and so I would content myself by indicating a broad classification and variety of the Jain literature in Hindi over the past one thou-

sand years. It would be of interest to note that the bulk of Jain literature in Hindi is in prose whereas the Vaishnava literature is primarily in verse. Any study of the development of Hindi prose would be incomplete unless we refer to the Jain works of the 16th to 19th centuries. Another important feature of the Jain literature is the descriptive colophon at the end of the work. The colophon generally gives the name and genealogy of the author, the year of composition, the year of copy-making and sundry information of historical nature.

The Jain literature in Hindi may first be classified into two broad divisions of prose and verse. The prose literature consists of scriptural stories, commentaries on the scriptures, dramas and novels. Daulatram in the 18th century was a voluminous writer. He translated the three important Puranas, namely, the **Adipurana**, the **Padmapurana** and the **Harivamsapurana**, and also a story collection known as the **Punyasravakatha-kosa**, besides a few biographical accounts, and also wrote commentaries. Todarmall, who also lived in the 18th century, was a very profound scholar of the scriptures and his treatise, the **Moksha-Marga-Prakasaka**, stands out by far as a monumental work on Jain metaphysics and philosophy. Sadasukh, early in the 19th century, was another important prolific prose writer. The significant thing about this literature is that it is still quite popular and religious discourses would be incomplete without a reading from some of these Bhasha Puranas and Bhasha Vachanikas.

During the current century, different literary forms have been freely deployed to elaborate the Jain themes. Story literature in Prakrits and Sanskrit has been rendered into chaste Hindi. Most of the Jain Puranas have also been translated. The Prakrit and Sanskrit texts have been translated and suitably commented upon. Independent works have been written on Jain metaphysics, philosophy and ethics. Dramas, plays and novels have also been written to explain the traditional lore as well as to pronounce the Jain concept of virtue. Gopaldas Varaiya's novel **Sushila** is also important for the study of the development of Hindi novel. Independent works have also appeared on history, art and culture, and the modern writers prefer a critical and comparative approach.

The older literature in verse may be classified into the Epical, the Musical and the Prosodical. The Epical literature includes the Rasa and the Charita. They treat a subject in a biographical style and interweave stories. The **Jambuswami-rasa** and the **Sripala-Charita** may be cited as examples. The Musical includes the devotional hymns and songs, the historical anecdotes versified, the spiritual themes rendered figura-

tively, the autobiographical verses, and the miscellany to include verses on ethics, metaphysics and philosophy, and the **Barahamasa**. The devotional compositions are generally based on the classical **ragas** and **raginis**, and have a good musical score. Dyanat, Daulat and Budhjan may be specially noted in this connection. Among the autobiographical, the **Ardhakathanaka** of Banarasidas (16th century) is outstanding; it is a veritable storehouse of historical information woven round the personality of the poet. The Prosodical includes treatment of the **ras, pingal** and **alankar**. But unlike the Krishnite Iliterature bearing on the same pattern, it lays stress on **vairagya** (detachment from worldliness) and the **Santa-ras** (temper of tranquillity). The **Sringar** (amorousness) is not prohibited and it is given due expression especially in the **Barahamasa**, but it also ultimately leads to the **Santa-ras**. This is in keeping with the Jain emphasis on detachment from mundane pleasures in pursuit of the ultimate reality.

The modern literature in verse, belonging to the current century, is as much diverse as the general Hindi literature of the century. Several non-Jain writers have also been attracted to the Jain themes. This has also been the case with the prose writers. Rangeya Raghava, Anup Sharma and Ramdhari Singh Dinkar may be cited as examples.

Sometime it so happens that a particular work found in a Jain Bhandar and supposed to be written by a Jain author is simply dismissed as a sectarian Jain work. **Muta Nainsi' ki Khyat**, a historical compendium no less in value than the **Tod's Annals**, suffered this fate for a long time. As more and more information is being brought out, there is lesser scope for such apathy.

To sum up, the Jain literature in Hindi or the Hindi literature bearing on the Jain themes emerged in the first throes of Hindi, early in the 13th century. Both the prose and verse have been popular; and the prose was adopted earlier in this literature. This literature is rich in historical material, besides its own special field. The musical score, melody and the temper of tranquility underlying the devotional compositions is its speciality. The Jain literature is particularly relevant in tracing the historical development of the different forms of Hindi language and the different styles of Hindi Iliterature.

(भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के कार्यक्रमों के अन्तर्गत हिन्दी भाषा व साहित्य की विशिष्ट विद्वान डॉ० डषा माथुर द्वारा हिन्दी में जैन साहित्य का परिचय स्वरूप यह वार्ता आकाशवाणी लखनऊ से ११ मई, १९७५, को प्रसारित की गई थी। -सम्पादक)

'परिशिष्ट पर्व' की भूमिका

- डॉ० सागरमल जैन

जैन धर्म में परम्परागत दृष्टि से भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के काल तक अनेक कथानक मिलते हैं, जिन पर स्वतंत्र रूप से और सामूहिक रूप से दिगम्बर परम्परा में पुराण और श्वेताम्बर परम्परा में चरित-काव्य लिखे गए हैं, किन्तु वर्तमान युग के इतिहासकारों ने इन सभी को पौराणिक काव्य-साहित्य के अंतर्गत ही लिया है। जैन तीर्थंकरों में ऋषभदेव, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर की ऐतिहासिकता को पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता है और इसीलिए इनके जीवन-चरित्र को पूर्णतया पौराणिक मान लेना भी उचित नहीं होगा। पार्श्व और महावीर की ऐतिहासिकता तो अब इतिहासकारों ने मान्य कर ली है। फिर भी इनके जीवन के सम्बन्ध में जो आख्यान और चरित-काव्य मिलते हैं, उनमें कितनी ऐतिहासिकता है और कितनी पौराणिकता है यह निर्णय करना अत्यंत कठिन है। फिर भी उनके जीवन-वृत्त में जो मानवीय पक्ष एवं घटनाएँ प्रतिपादित की गई हैं, उनकी ऐतिहासिकता को हम नकार नहीं सकते हैं। जैन तीर्थंकरों के और विशिष्ट पुरुषों के जीवन के सन्दर्भ में जो संस्कृत काव्य-ग्रन्थ हमें उपलब्ध होते हैं, उनमें जिनसेन का **महापुराण** अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इस शैली का प्रथम ग्रन्थ कहा जा सकता है। इसके दो प्रमुख विभाग हैं - एक **आदिपुराण** एवं दूसरा **उत्तरपुराण**। **आदिपुराण** में भगवान ऋषभदेव का और उस काल के प्रमुख व्यक्तियों का निरूपण है और **उत्तरपुराण** में शेष २३ तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसके अतिरिक्त अरिष्टनेमि और कृष्ण के जीवन-चरित को लेकर **हरिवंश-पुराण** की भी रचना हुई है। वैसे दिगम्बर परम्परा में पुराणों के लेखन की यह परम्परा अधिक प्रचलित रही है और लगभग ६वीं शताब्दी से लेकर १५वीं-१६वीं शताब्दी तक संस्कृत एवं अपभ्रंश में अनेक पुराण-ग्रन्थ लिखे गए हैं।

श्वेताम्बर परम्परा में जिन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के सन्दर्भ में चरित-काव्य लिखने की परम्परा रही है, उनमें सर्वप्रथम राम कथा को लेकर **'पउम चरिय'** की रचना विमलसूरि ने की थी यद्यपि इसमें ऋषभ आदि कुछ तीर्थंकरों के चरित भी संक्षेप में वर्णित हैं। प्राकृत में रचित रामकथा के आधार पर रविसेन ने **'पद्मचरित'** की संस्कृत में और स्वयंभू ने **'पउमचरिउ'** की अपभ्रंश में रचना की थी। इसी प्रकार श्वेताम्बर परम्परा में आगमों के अतिरिक्त भी कृष्ण और पांडवों के चरित्र को लेकर कुछ ग्रन्थ लिखे गए। इसी क्रम में श्वेताम्बर परम्परा में मलधारी गच्छ के देवप्रभसूरि ने **'पांडव चरित्र'** की रचना की थी। फिर भी ये सभी आख्यान मूलतः पौराणिक

ही माने गए हैं। ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से इनको अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है।

जहाँ तक श्वेताम्बर परम्परा का प्रश्न है, उसमें महापुरुषों पर सामूहिक चरित काव्य लेखन की परम्परा संभवतः शीलांकसूरि (नवीं-दसवीं शती) से मानी जाती है। शीलांक के **'चउप्पन्न-महापुरिस-चरियं'** में सर्वप्रथम चौबीस तीर्थंकरों, बारह चक्रवर्तियों, नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों, ऐसे चौवन महापुरुषों के चरित उल्लिखित हैं। यह ग्रन्थ मूल रूप से प्राकृत में रचित है। इस ग्रन्थ का आधार लेकर आचार्य हेमचन्द्र ने **'त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित'** की रचना की थी और उसमें नौ प्रतिवासुदेवों के चरित्र और जोड़ दिये तथा उसी के परिशिष्ट के रूप में उन्होंने भगवान महावीर के पश्चात् की आचार्य परम्परा का उल्लेख करते हुए **'परिशिष्ट पर्व'** नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

यह मूल ग्रन्थ **त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित** का एक परिशिष्ट था, अतः इसका नाम **'परिशिष्ट पर्व'** दिया गया। इसका एक अन्य नाम **'स्थविरावली चरित'** भी है। यह ग्रन्थ **त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र** के दस पर्वों के पश्चात् उसके परिशिष्ट के रूप में ही लिखा गया है। इसमें जम्बूस्वामी से वज्रस्वामी पर्यन्त जैन परम्परा के प्रभावक आचार्यों के चरित्र कथित हैं। यह ग्रन्थ भी **त्रिषष्टि-शलाका-पुरूष-चरित** के समान ही संस्कृत भाषा में रचित है। इसके तेरह पर्व हैं और सम्पूर्ण ग्रन्थ ३५०० श्लोक परिमाण है। जम्बूस्वामी से लेकर वज्रस्वामी तक के जैन-आचार्यों का उल्लेख होने से जैन-दृष्टि से इसे एक ऐतिहासिक-काव्य का नाम दिया जा सकता है। फिर भी मूल-दृष्टि उपदेशक होने से इसमें दृष्टांतों के माध्यम से अन्य अनेक पौराणिक कथानक भी जोड़ दिए गए है। साथ ही उन प्रभावक आचार्यों की महत्ता दिखाने हेतु कुछ चामत्कारिक अतिशयोक्तियाँ भी जोड़ दी गई हैं। इसीलिए इसमें पौराणिकता का अंश भी समाया हुआ है। फिर भी इन कथानकों की आधार-भूत विषयवस्तु, विशेष रूप से तीर्थंकरों एवं स्थविरों के चरित्र, तो आगम-काल से ही मिलने लगती है।

श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अर्धमागधी आगमों में सर्वप्रथम हमें **कल्पसूत्र** में चार तीर्थंकरों के जीवन-चरित्र के साथ ही **स्थविरावली** में इन प्रभावक आचार्यों के सन्दर्भ उपलध होते हैं। इस **स्थविरावली** में सुधर्मास्वामी से लेकर देवर्धिगणि तक की आचार्यों की पट्ट परम्परा मिलती है। यद्यपि यह **स्थविरावली** इन आचार्यों के जीवन चरित्र का तो कोई विशेष उल्लेख नहीं करती है, किन्तु इनके गण, शाखा एवं कुलों और शिष्य परम्परा आदि के निर्देश इसमें मिल जाते हैं तथा इन गण शाखाओं और कुलों की उत्पत्ति किस आचार्य से किस रूप में हुई, इसकी सूचना भी हमें

उपलब्ध हो जाती है। इस संक्षिप्त सूचना के अतिरिक्त इस **स्थविरावली** में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

इस **स्थविरावली** की लगभग समकालीन आचार्य परम्परा का उल्लेख करने वाली दूसरी **स्थविरावली** हमें **नन्दीसूत्र** में प्राप्त होती है। **नन्दीसूत्र** की इस **स्थविरावली** की विशेषता यह है कि चाहे इसमें आचार्यों के गण, कुल, परम्परा आदि का उल्लेख अधिक न हो किन्तु उनके जीवन की विशिष्ट घटनाओं अथवा उनकी विशिष्ट योग्यता के निर्देश इसमें हमें मिल जाते हैं। इस प्रकार इन आचार्यों के व्यक्तित्व को उजागर करने की दृष्टि से **नन्दीसूत्र स्थविरावली** विशिष्ट महत्त्व की जान पड़ती है। इसमें वाचक-वंश अथवा विशिष्ट ज्ञानी आचार्यों का ही उल्लेख हुआ है, अतः **कल्पसूत्र स्थविरावली** की अपेक्षा यह स्थविरावली किसी दृष्टि से संक्षिप्त ही कही जा सकती है। आचार्यों के कुछ विशिष्ट कार्यों एवं गुणों के अतिरिक्त इस स्थविरावली में भी आचार्यों के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में हमें विशेष जानकारी नहीं मिल पाती है। फिर भी जैन इतिहास की दृष्टि से **कल्पसूत्र** और **नन्दीसूत्र** की स्थविरावलियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हैं। **कल्पसूत्र स्थविरावली** की ऐतिहासिक प्रामाणिकता निर्धारित करने के लिए हमें मथुरा के स्तूप से जो पचास से अधिक अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, महत्त्वपूर्ण हैं। वस्तुतः जैन अभिलेखों में मथुरा से प्राप्त ये स्तूप अभिलेख अति महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे **कल्पसूत्र** की **स्थविरावली** की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध होती है। दूसरी ओर ये **कल्पसूत्र** की **स्थविरावली** की प्रामाणिकता को भी पुष्ट करते हैं।

इन आगमिक उल्लेखों के अतिरिक्त महावीर की पट्ट परम्परा सम्बन्धी कुछ प्रकीर्ण उल्लेख हमें **निर्युक्ति** साहित्य में मिल जाते हैं। परम्परागत दृष्टि से यह माना जाता है कि दस आगमिक ग्रन्थों पर सर्वप्रथम निर्युक्तियां लिखी गईं। **आवश्यक निर्युक्ति** में दस निर्युक्तियों के लिखे जाने का उल्लेख है। उनमें से वर्तमान में **ऋषि भाषित** और **सूर्य-प्रज्ञप्ति** की निर्युक्ति तो उपलब्ध नहीं होती किन्तु शेष आठ **दशवैकालिक निर्युक्ति** के ही अंश के रूप में **ओघ-निर्युक्ति** और **पिंड-निर्युक्ति** के साथ दस निर्युक्ति ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। निर्युक्तियों में कहीं-कहीं महावीर के परवर्ती-कालीन कुछ जैन आचार्यों की कथाओं के निर्देश भी हमें उपलब्ध हो जाते हैं। निर्युक्तियां पद्य रूप होने के कारण उनमें भी कथाओं के निर्देश मात्र ही मिलते हैं, उनका विस्तृत विवेचन नहीं मिलता है। कथाओं में अपेक्षाकृत कुछ विस्तृत निर्देश हमें प्राकृत भाषा में रचित आगमों के भाष्यों एवं चूर्णियों में मिल जाते हैं। चूर्णियों के आधार पर हरिभद्र, शीलांक और अभयदेव ने जो आगमों की टीकाएँ लिखी हैं, उनमें भी इन कथाओं के निर्देश अधिक विस्तार से हमें मिलते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने १२वीं

शताब्दी में इन्हीं पूर्व उल्लिखित कथानकों के आधार पर **'परिशिष्ट पर्व'** की रचना की है। अतः इन कथानकों की ऐतिहासिकता को पूरी तरह झुठलाया नहीं जा सकता है यद्यपि इन कथानकों में कुछ पौराणिक अंश भी आ गया है, जिसका निर्देश हम पूर्व में कर चुके हैं। प्रोफेसर हर्मन याकोबी ने **परिशिष्ट पर्व** की इन कथाओं की सम्पूर्ण सामग्री किन-किन आगमिक व्याख्या ग्रन्थों से ली गई है, इसका सम्पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। इससे यह स्पष्ट कहा जाता है कि ये कथाएँ आचार्य हेमचन्द्र की स्वैर-कल्पना नहीं हैं। इनमें उन्होंने आगमिक व्याख्याकारों के कथानकों को अपना आधार बनाया है।

परिशिष्ट पर्व के प्रथम सर्ग से लेकर पाँचवें सर्ग तक आचार्य हेमचन्द्र ने जम्बूस्वामी से लेकर भद्रबाहु प्रथम तक के कथानकों का उल्लेख किया है। इसमें क्रमशः जम्बूस्वामी, प्रभव, श्यम्भव, यशोभद्र, सम्भूतिविजय और भद्रबाहु के कथानक उल्लिखित हैं। साथ ही भद्रबाहु के परवर्ती आचार्यों में स्थूलिभद्र, महागिरि, सुहस्ति आदि के भी उल्लेख इसमें हैं। प्रसंगवश इन्द्रदिन्न, आर्यदिन्न, सिंहगिरि और आर्य भद्रगुप्त के जीवनवृत्त के निर्देश भी इसमें उपलब्ध होते हैं। साथ ही तोसलीपुत्र भद्रगुप्त, धनगिरि आदि के भी उल्लेख हैं। यह अंश विस्तृत है तथा इसमें इन आचार्यों के पूर्व-भवों एवं अन्य कथाओं का सम्मिश्रण भी देखा जाता है। दूसरे एवं तीसरे पर्व में मुख्य रूप से प्राणी कथाएं, लोक कथाएं तथा नीति कथाएं दी गई हैं। चतुर्थ पर्व भी मूलतः उपदेशात्मक होकर ऐसी ही कथाओं से युक्त है। पाँचवें पर्व के अर्द्धभाग से लेकर आठवें पर्व तक आचार्य हेमचन्द्र ने प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास से सम्बन्धित जानकारी प्रदान की है। इसमें पाटलिपुत्र की स्थापना, उस पर नन्दवंश का अधिकार और नन्दवंश से सम्बन्धित राजाओं के कथानक दिए गए हैं। उसके पश्चात् मौर्यवंश की स्थापना, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और उसके मन्त्री चाणक्य के कथानक दिए गए हैं। जैन परम्परा में समाधिमरण सम्बन्धी जो कथानक मिलते हैं, उनमें भी चाणक्य के साथ हुए षड्यन्त्रों तथा उसके द्वारा समाधि-मरण सम्बन्धी कथानक मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इन सर्गों में वररूचि, सगडाल आदि के कथानक भी दिए गए हैं। इसी क्रम से मौर्यवंश के बिन्दुसार, अशोक, कुणाल और सम्प्रति के कथानक भी इन्हीं सर्गों में मिलते हैं। सम्प्रति के द्वारा जैन धर्म के प्रचार के लिए जो उपक्रम किए गए थे उनका निर्देश भी उपलब्ध होता है। इसी प्रकार **परिशिष्ट पर्व** सामान्य रूप से भारतीय इतिहास और विशेष रूप से जैन धर्म के इतिहास के सन्दर्भ में विशेष महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है।

परिशिष्ट पर्व के नवम पर्व से लेकर तेरहवें पर्व तक आचार्य हेमचन्द्र ने

स्थूलिभद्र से लेकर वज्रस्वामी तक के इतिहास का प्रतिपादन किया है। इन पाँच सर्गों में स्थूलिभद्र, आर्य सुहस्ति, आर्य महागिरि आदि से लेकर वज्रस्वामी तक के पट्ट-धरों के जीवन-वृत्तान्त और उनसे सम्बन्धित ऐतिहासिक कथानकों का भी समुचित विवरण प्रस्तुत कृति में मिल जाता है। इस प्रकार जैन इतिहास की दृष्टि से महावीर के पश्चात् की पट्ट परम्परा का कुछ अतिशयोक्तियों को छोड़ दें तो एक प्रामाणिक चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार **परिशिष्ट पर्व** ऐसा प्रामाणिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जो महावीर से लेकर ईसा की प्रथम-द्वितीय शताब्दी तक का जैन इतिहास प्रस्तुत कर देता है। भद्रेश्वर की **कहावली** इसके बाद का पहला ग्रन्थ है, जो महावीर की परम्परा में हुए आचार्यों में हरिभद्र (आठवीं शताब्दी) तक का विवरण प्रस्तुत करता है। उसके पश्चात् इस दृष्टि से लिखे गऐ ग्रन्थों में प्रभाचन्द्र का **'प्रभावक-चरित'** (वि.सं. १३३४) भी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसी क्रम में आगे इस दृष्टि से लिखे गए ग्रन्थों में **पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह, प्रबन्ध-चिन्तामणि, प्रबन्ध-कोश, प्रभावक कथा** आदि ग्रन्थ आते हैं जो जैन इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन इन सभी ग्रन्थों में ग्रन्थकारों ने कहीं-न-कहीं **परिशिष्ट पर्व** का सहयोग लिया है। इस दृष्टि से **परिशिष्ट पर्व** का महत्त्व और विशेषता स्पष्ट हो जाती है।

परिशिष्ट पर्व की शैली उदात्त है। उपदेशप्रद होते हुए भी इसमें प्रवाह गुण और प्रसाद गुण उपलब्ध होते हैं। **प्रभावक-चरित, पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह, प्रबन्ध-चिन्तामणि, प्रबन्धावली, प्रबन्ध-कोश** आदि भी इसी तरह की रचनाएँ हैं। जहाँ **प्रबन्ध-कोश** आदि ग्रन्थों में भद्रबाहु से परवर्ती नन्दिल, जीवदेव, आर्य खपुट, पादलिप्त, सिद्धसेन, मल्लवादि, हरिभद्र, बप्पभट्टी आदि का भी उल्लेख किया गया है, वहाँ **परिशिष्ट पर्व** वज्रस्वामी के जीवन वृत्तान्त के साथ ही समाप्त हो जाता है। जबकि ये सभी आचार्य हेमचन्द्र से पूर्ववर्ती रहे हैं, फिर भी हेमचन्द्र ने इनका उल्लेख क्यों नहीं किया? यह विचारणीय विषय है।

परिशिष्ट पर्व के मूल एवं गुजराती अनुवाद का प्रकाशन तो हमें उपलब्ध होता है किन्तु इसके हिन्दी अनुवाद का कोई भी प्रामाणिक प्रयत्न नहीं हुआ जबकि यह ग्रन्थ परवर्ती प्रबन्ध साहित्य के ग्रन्थों का मुख्य आधार रहा है। एक साध्वीजी ने अति परिश्रम करके इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया है परन्तु उसका प्रकाशन अभी प्रतीक्षित है।

- निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ,
दुपाडा रोड, शाजापुर-४५६००१

अहिंसा विमर्श

- पं० निहालचंद जैन, से०नि० प्राचार्य

अहिंसा किसी पंथ विशेष का दर्शन नहीं है और न ही कोई धार्मिक नारा है। यह तो प्राणी मात्र के मूल अस्तित्व से जुड़ी एक स्वाभाविक जीवन शैली है। अहिंसा पर जब सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक जीवन फलक की दृष्टि से विचार करते हैं तो यह अनेक विशिष्टताओं की समष्टि प्रतीत होता है। शांति, प्रेम, करुणा, दया, कल्याण, अभय, रक्षा और अप्रमाद आदि अहिंसा के ही पर्याय हैं। आत्मीयता, त्याग, समता और करुणा अहिंसा के आधार हैं। वस्तुतः ये सभी गुण मनुष्य के उदात्त जीवन मूल्यों की धरोहर हैं। मानव के लिए जो भी आदर्श निर्धारित किए गऐ हैं, एकमात्र अहिंसा को अपनाने पर वे सभी प्राप्त किए जा सकते हैं। अहिंसा समग्र चिंतन है, संपूर्ण जीवन दर्शन है।

अमेरिका का विश्व व्यापार केंद्र और सुरक्षा केंद्र (पेंटागन) जब आतंकवादी हिंसा की बलि चढ़ गए तो विश्व के तमाम राष्ट्रों ने अहिंसा की अनिवार्यता महसूस की और अमन-चैन और शांति के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा महात्मा गांधी के जन्म दिन २ अक्टूबर को २००७ में विश्व भर में 'अहिंसा दिवस' मनाए जाने की घोषणा की गई। भारतीय संस्कृति एवं जैन धर्म में पाँच महाव्रतों में प्रथम एवं सर्वोच्च स्थान अहिंसा को दिया गया है। न केवल वैयक्तिक जीवन साधना के रूप में, बल्कि वैश्विक नव समाज रचना के लिए भी अहिंसा की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाने लगा है। लोकतंत्र में अहिंसा के बल पर ही कमजोर वर्ग को वही सुरक्षा व भरणपोषण सुलभ हो सकता है जैसा सबल लोगों को। फ्रांस की राज्यक्रांति और रूस में साम्यवाद के लिए हिंसा का तांडव हुआ, पर परिणाम में तानाशाही शासन स्थापित हुआ जिससे न केवल हिंसा की व्यर्थता सिद्ध हुई, अपितु विश्व में लोकतंत्र के प्रति पहले से अधिक रुझान बढ़ा। माना गया कि लोकतंत्र में ही लोकहित, लोकशक्ति और लोकसत्ता निहित है और अहिंसा के बिना वह संभव नहीं है। सर्वोदय का सिद्धांत भी अहिंसा की बुनियाद पर खड़ा है।

हिंसा और अहिंसा के विश्लेषण में अमृताचंद्राचार्य ने इसकी विस्तृत व्याख्या **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** में की है। उनके उस चिंतन में मनोविज्ञान एवं अध्यात्म का सहज समवाय है। जैन धर्म में पाँच पाप माने गए हैं - हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह। अमृताचंद्राचार्य का मानना है कि यथार्थ में कोई पाप है - तो वह हिंसा ही है। हिंसा से बचने के लिए ही आगम शास्त्रों में शेष चार पापों की चर्चा है। किसी

के द्रव्य का हरण करना या किसी हेतु से चोरी करना हिंसा है। सत्य व प्रिय वाणी यदि वीणा की भांति सुखकर लगती है, तो असत्य या झूठ वचन बाण की भांति दुःखदायी होने से वह भी हिंसा ही है। एक बार के अब्रह्मसेवन में नवकोटी जीवों की हिंसा होती है। पुण्य के उदय से भले ही विभूति व सुख समृद्धि का योग होता है, परंतु परिग्रही पापार्जन ही करता है क्योंकि वह शोषण और अनाचार का पोषक होने से हिंसा की श्रेणी में आता है।

अमृताचंद्राचार्य ने कषाय भाव से परिमित हुए मन, वाणी और काय के योग से द्रव्य (भौतिक रूप से) एवं भाव, दोनों प्रकार के जीव के प्राणों का घात करना हिंसा माना है। उन्होंने राग भाव को भी हिंसा और उसके अभाव को अहिंसा के दायरे में रख कर कहा है -

यत्खलु कषाय योगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ।
अप्रादुर्भावः खालु रागादीना भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्ति हिंसेति जिनागमस्य संक्षेप।।

आचार्य अमृतचंद्र कहते हैं कि एक जीव तीव्र परिणामों में यदि थोड़ी हिंसा भी करता है तो उदयकाल में उसे बहुत फल भोगना पड़ता है, जबकि दूसरा बड़ी हिंसा करके भी थोड़ा फल पाता है। डॉक्टर द्वारा शल्य क्रिया करते हुए रोगी मर जाता है, परंतु डॉक्टर को अल्प दोष ही लगता है क्योंकि जीवन-सुरक्षा के लिए शल्य क्रिया करते हुए ऐसा हुआ। ड्राइवर द्वारा अप्रत्याशित रूप से दुर्घटना के कारण बहुत लोगों की मुत्यु हो जाती है, फिर भी उसे अल्प हिंसा का दोष लगता है।

इसी प्रकार दो देशों के बीच युद्ध में, दोनों ओर के अनेक सैनिक हताहत होने पर भी उन्हें हिंसा का फल नहीं भोगना पड़ता। वे वेतनभोगी होते हैं और युद्ध करवाने वाले के आदेश पर शस्त्र संचालित करते हैं। अतः युद्ध करवाने वाले प्रमुख राजा या सेनाधिकारी को ही उसका फल भोगना पड़ता है।

आचार्य समंतभद्र का मानना है कि अहिंसा केवल दर्शन मात्र नहीं है यह ऐसा आचारगत वैशिष्ट्य है जो तुरंत दिखाई दे जाता है। वास्तव मे समंतभद्र स्वामी ने जो पहचान व पैठ बनाई, वह उनकी अमरकृति **'रत्नकरंडश्रावकाचार'** के रूप में विश्रुत है। उन्होंने श्रावकों के लिए अहिंसाणुव्रत को धारण करने की बात कही है। वे कहते हैं कि मन, वचन और काय के योग से संकल्प पूर्वक त्रस-जीवों का अर्थात् द्विंद्रिय से पंचेंद्रिय जीवों का वध न खुद करना, न किसी से कराना और न वध का अनुमोदन करना - स्थूल हिंसा से विरत होना है। यही अहिंसाणुव्रत है। इसके क्रमशः

पांच अतिचार (विक्षेप/व्यतिक्रम) हैं। किसी मनुष्य या पशु-पक्षी को छेदना, बांधना, पीड़ा देना, क्षमता से अधिक भार लादना और आहार देने में कमी रखना - ये हिंसा के ही रूपांतरण हैं। इसी प्रकार शेष चार अणुव्रतों का धारी श्रावक, अवधिज्ञान, अणिमा आदि आठ ऋद्धियों का धारी होकर दिव्यशरीर के साथ सुरलोक को प्राप्त करता है।

जैन तत्त्व चिंतन को सूत्रों में प्रस्तुत करने का कार्य उमास्वामीदेव ने सर्वप्रथम किया। ईसा की दूसरी सदी के आचार्य उमास्वामी का **'तत्त्वार्थ सूत्र'** इतना सर्वांगीण है कि परवर्ती आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इसकी टीका रूप **'सर्वार्थसिद्धि'** ग्रंथ और भट्टअकलंदेव ने **'तत्त्वार्थवार्तिक'** जैसे महान ग्रन्थों का प्रणयन किया, परंतु किसी नए सूत्र को अपनी ओर से नहीं लिखा। आचार्य उमास्वामी ने हिंसा को व्यापक दृष्टिकोण से लिया है। वे कहते हैं - **प्रमत्त-योगात्प्राण व्यपरोपणं हिंसा** (सूत्र १३, अध्याय ७) अर्थात् प्रमाद से सहित व्यक्ति के योग अर्थात् मन, वचन, काय की क्रिया द्वारा प्राणों का वियोग करने से प्राणी की हिंसा होती है। प्राण आत्मा से सर्वथा भिन्न नहीं है। प्राण वियोग होने पर आत्मा को ही दुख होता है, अतः वह हिंसा व अधर्म है। यहां विशेष ध्यातव्य यह है कि एक के भी अभाव में हिंसा नहीं होती। उक्त सूत्र से एक शंका उठाई जा सकती है कि केवल प्रमत्तयोग से हिंसा कैसे संभव है, जबकि प्राणव्यपरोपण न हो?

इसके समाधान में कहा गया है कि प्रमादवान, प्रमत्तयोग से स्वयं के ज्ञानदर्शनादि भाव प्राणों का वियोग (घात) करने से अपनी हिंसा करता है, फिर भले ही दूसरे प्राणी का वध हो या न भी हो। इस संदर्भ में अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि कषाय सहित परिणाम होने से वह पहले अपने आपको घातता है, फिर चाहे अन्य जीव की हिंसा हो अथवा न हो। हिंसा रूप परिणमन होने से प्रमाद के कारण निरंतर प्राणघात का सद्भाव बना रहता है। दूसरा प्रसंग यह है कि जल, थल एवं आकाश में स्थूल व सूक्ष्म, दोनों प्रकार के जीव हैं। अप्रमत्त साधु द्वारा उनके प्राण वियोग होने पर वह अहिंसक बना रहता है क्योंकि सूक्ष्म जीव न तो किसी से रुकते हैं और न किसी को रोकते हैं, अतः उनकी तो हिंसा होती नहीं है, परंतु जो स्थूल जीव हैं उनकी वह यथाशक्ति रक्षा करता है, तब भला प्रयत्नपूर्वक रोकने वाले संयत के द्वारा हिंसा कैसे हो सकती है?

इस प्रकार जैन दर्शन में जैनाचार्य द्वारा हिंसा व अहिंसा की ऐसी सूक्ष्म व्याख्या की गई है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

अहिंसा व्रत का निर्दोष पालन करने के लिए आचार्य उमास्वामी ने चार भावनाएं निरूपित की हैं - **मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थयानि च सत्वगुणाधिक क्लिश्यमाना**

विनेयेषु (अ. ७, सूत्र ११) अर्थात् प्राणीमात्र में मैत्री (मैत्रीभाव में अभय एवं क्षमा भाव निहित रहता है), गुणीजनों में प्रमोद या हर्ष भाव, दुखी जीवों के प्रति करुणा तथा विरुद्ध चित्त या स्वभाव वाले दुर्जन व्यक्तियों में माध्यस्थ भाव (उदासीन वृत्ति) रखना चाहिए। आचार्य अमितगति ने अपने **सामायिक पाठ** में अहिंसा की इन भावनाओं को इस प्रकार उद्धृत किया है -

सत्त्वेषु मैत्रीः गुणिषु प्रमोदः। क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौः। सदा ममात्मा विदधातु देव।।

डॉ० जयकुमार जलज ने **अट्ठपाहुड** के हिंदी अनुवाद की प्रस्तावना में एक बोधपूर्ण वाक्य लिखा है - 'जैन परंपरा में कुंदकुंद और उमास्वामी ही हैं, जो आखिरी अदालत हैं।' **'समयसार'** कुंदकुंद स्वामी की वह अभिव्यक्ति है, जिसमें वह अपने आत्मानुभव को अतल गहराई से अभिव्यक्त करते हैं। उन्होंने अहिंसा को एक मौलिक अंदाज या प्ररिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया है। कुंदकुंदाचार्य अपनी अमरकृति **'प्रवचन सार'** में कहते हैं -

मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।।
पयदस्स णत्थि बंधों, हिंसामेत्तेण समिदस्स।।

जीव मरे या न मरे, परंतु अयत्नाचारी नियमतः हिंसक है। इसके विपरीत यदि यत्नाचारी व्यक्ति सावधानी पूर्वक चर्या या वर्तन कर रहा है और अनजान में जीव का विघात हो जाए, तो भी वह अहिंसक है। यह आगम दृष्टि है। रागादि के वशीभूत होकर प्रमाद अवस्था में जो भी प्रवृत्ति या कृत्य होता है, वह हिंसा के दायरे में आता है। उदाहरणार्थ - एक व्यक्ति बाण छोड़ता है, परंतु लक्ष्य पर नहीं लगा और जिस पर छोड़ा वह अपने पुण्य से बच गया। लेकिन, उस व्यक्ति की परिणति तो मारने की थी। कर्म सिद्धांत कहता है कि आप जिस दृष्टि से भर कर आए हो, उसी दृष्टि से बंध चुके हो। आप हिंसक ही हो, भले ही आप उसके प्राणों का घात किसी योग से नहीं कर पाए हों।

कालुष्य भाव घोर हिंसा का निमित्त होते हैं। स्वयंभूरमण समुद्र का महामच्छ जब छह माह सोता है, तो भी उसका दो सौ पचास योजन का मुख खुला रहता है। उस समय अनेक जीव उसके मुख में आते व जाते रहते हैं। उस महामच्छ के कान में तंदुल मच्छ बैठा हुआ सोचता है कि यदि मुझे इतना बड़ा शरीर मिलता, तो मैं एक को भी नहीं छोड़ता। कान के मल को खाने वाला वह तंदुलमच्छ ऐसे कलुषित भाव करके भाव-हिंसा से इतना पाप बंध कर लेता है कि मर कर सातवें नरक जाता है। इस प्रकार कषाय योग से, यानी कालुष्य भावों से, जो प्राणों का व्यपरोपण चल रहा

है, उससे निरंतर हिंसा हो रही है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी के इसी अभिप्राय को अमृतचंद्राचार्य निम्नांकित गाथा में स्पष्ट करते हैं -

व्युत्थानावस्थायां रागादिनां वशप्रवृत्तायाम्।
म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा।।

रागादिक भावों के वश में प्रवृत्त हुई अयत्नाचार रूप प्रमाद अवस्था में; जीव मरे अथवा न मरे परंतु हिंसा तो निश्चय से होती ही है।

जैनाचार्य विशुद्धसागर महाराज **पुरुषार्थ देशना** में इसे अध्यात्मदेशना के रूप में समझाते हैं - 'हे मनीषी! लगता ऐसा है कि मैंने दूसरे का घात किया, परंतु दूसरे का तो पर्याय का घात होता है, लेकिन परिणामों का घात मेरा ही होता है।'- पर्याय जितना महत्त्वशाली है, परिणति उससे कई गुना महत्त्वशाली है। पर्याय पुनः मिल जाता है, परंतु वैसी परिणति पूरी पर्याय में नहीं मिल पाती है।

आचार्य सोमदेव सूरि ने **'यशस्तिलकचम्पूगत उपासकाध्ययन'** में कहा है कि प्रमाद के योग से प्राणियों के प्राणों का घात करना हिंसा है और उनकी रक्षा करना अहिंसा है। आचार्य सोमदेव प्रमादी का विषय विस्तार बताते हैं कि जो जीव चार विकार, चार कषाय, पांच इंद्रियों, निद्रा और मोह के वशीभूत है, वह प्रमादी है। देवता के लिए, अतिथि व पितरों के लिए, मंत्रसिद्धि व औषधि के लिए प्राणियों की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

आचार्य अमितगति **'अमितगति श्रावकाचार'** में श्रावकों को प्रबोधन देते हैं कि अहिंसा के बिना श्रावक के लिए व्रत-नियमादिक सुख के उत्पादक नहीं होते। जैसे पृथ्वी के बिना पर्वत नहीं ठहर सकते हैं, उसी प्रकार आत्मगुणों की आधारभूत अहिंसा को विनाश करने वाला पुरुष अपनी आत्मा को नरक में गिराता है। आचार्य अमितगति हिंसा के १०८ भेद कहते हैं - संरंभ, समारंभ और आरंभ रूप तीन प्रकार की हिंसा मन, वचन, काय तीन योगों से कृत, कारित और अनुमोदना पूर्वक क्रोध, मान, माया व लोभ रूप कषाय भावों से भक्ति निरंतर करता रहता है। इनका परस्पर गुणा करने पर हिंसा के एक सौ आठ (3x3x3x4=108) भेद हो जाते हैं। संरंभ से तात्पर्य है - हिंसा करने का विचार करना (वैचारिक हिंसा)। समारंभ है - हिंसा की क्रियान्विति के प्रयोजन से हिंसा के उपकरण, साधन आदि जुटाना, और हिंसा को प्रयोगात्मक कृत्य में बदलना आरंभ है।

जैन गृहस्थ (श्रावक) एवं साधु क्रमशः अणुव्रत और महाव्रत के रूप में उक्त १०८ प्रकार से होने वाली हिंसा की संभावनाओं से बचता है। जब आचारगत अहिंसा जाति, देश, काल एवं समय के द्वारा अविच्छिन्न होती है, तो अणुव्रत रूप से होती

है। परंतु, जब अहिंसा जाति, देश, कालादि द्वारा अविच्छिन्न न होकर सदा, सर्वदा, सर्वावस्था में पालन की जाती है, तो वही श्रेष्ठ व महाव्रत संज्ञा को प्राप्त होती है- जिसका पालन योगीजन करते हैं। गृहस्थों के लिए महाव्रत संभव नहीं है। वे जान-बूझ कर किसी भी प्राणी की शरीर से हिंसा नहीं करते, भले ही परिस्थितिजन्य हिंसा करवानी या अनुमोदना करना पड़े, अस्तु वह अणुव्रत रूप होती है।

उक्त प्रमुख आचार्यों के अनुभव व आगम कथनों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि हिंसा को द्रव्य-हिंसा व भाव-हिंसा के रूप में वर्गीकृत किया गया है। भौतिक रूप से द्रव्य-हिंसा भले ही घटित न हो, पर यदि मन में, विचारों में हिंसा की चिनगारियां उठ रहीं हों, तो वह भाव-हिंसा का कर्ता है। **वैचारिक हिंसा से आतंकवादी हाथों में शस्त्र उठाता है और फिर उसे कृत्य में बदलने के लिए द्रव्य-हिंसा करता है। २६ नवंबर २००८ को मुंबई में जो क्रूर हिंसा हुई, उसकी मूल जड़ है वैचारिक हिंसा।**

यदि अहिंसा के सिद्धांत का विकास किया जाए तो पहले व्यक्ति का भाव रूपांतरण होना जरूरी है। उसके विचारों में यह बात पल्लवित की जानी चाहिए कि समस्या का समाधान, समता और प्रेम रूप अहिंसक तरीके से संभव है। जैसे हम भीतर होते हैं, वैसा ही बाहर निर्मित करने लगते हैं। यदि भीतर हिंसा के भाव मौजूद हैं, तो हिंसा का परिमंडल या वर्तुल हमारे आस-पास मौजूद रहेगा और यदि भीतर अहिंसा व करुणा भाव बैठा हो तो वही हमारे आचरण में अभिव्यक्त हो सकता है।

दूसरे के अस्तित्व को सुरक्षित रखना अहिंसा है। क्योंकि -

सव्वे जीवानि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंति ण।।

अर्थात् सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते हैं। अतः प्राणी का वध करना घोर पाप है, उसका निषेध किया गया है।

आयारंग के सूत्र १/२/३ में कहा गया है कि -

सव्वे पाणा पिया उया सुहसाया दुह पडिकूला।
पिय जीविणो जीविउं कामा सव्वेसि जीवियं पियंनाइ।।

अर्थात् सुख सबको अच्छा लगता है और दुख बुरा। वध सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय है, अतः किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसीलिए आचर्य कार्तिकेय ने **'कार्तिकेयानुप्रेक्षा'** में कहा है कि - **जीवाणं रक्खणं धम्मो।**

अहिंसा की चरम मानसिक सिद्धि अनेकांतवाद है। अनेकांत दृष्टि के तीन आधार बिंदु हैं, जो विश्वशांति में सहायक परंतु सक्रिय साधन हैं - १. सापेक्षता,

२. समन्वय, ३. सह-अस्तित्व। यदि अहिंसा की व्यापक व वैश्विक धरातल पर समीक्षा की जाए, तो मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उपर्युक्त तीनों तत्व बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

कदाग्रह या दुराग्रह और दुरभिसंधि को दूर करके सापेक्षता मैत्री भाव को प्रेरित करती है। आग्रही शांति का पक्षधर नहीं हो सकता। आग्रही अहंकारी होता है। अनाग्रही दूसरे के प्रति सम्मानजनक व्यवहार करता है। उसकी सोच सकारात्मक होती है। वह संकुचित दृष्टि वाला नहीं होता है। वह सापेक्ष सत्य का ग्राही होता है। वह 'ही' की भाषा में नहीं, बल्कि 'भी' की संभावनाओं में जीता है। अनाग्रही होने से अहिंसक व्यक्ति सदैव शांति की वकालत करता है।

बिना अहिंसा के विज्ञान की ताकत सृजनात्मक नहीं बन सकती। आचार्य विनोबा भावे ने अहिंसा के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया -

विज्ञान + हिंसा = सर्वनाश

विज्ञान + अहिंसा = सर्वोदय

तात्पर्य यह है कि विज्ञान को अहिंसा व विवेक की आँख चाहिए। विज्ञान के द्वारा उत्पन्न आणिविक शक्ति सर्वनाश करने को बैठी है, विज्ञान का गठबंधन हिंसा के साथ है। अतः इस आतंकवादी माहौल में करुणा का पैगाम जरूरी है। करुणा के सूखते स्रोत पर गहरी चिंता होना आवश्यक है। मनुष्य की मौलिकता को बचाए रखना आज के विज्ञान और वैज्ञानिकों के लिए चुनौती है।

हिंसा के मूल में एक और कारण है - 'साधन शुद्धि' का अभाव। वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारवाद ने कभी पूरी न होने वाली लालसाओं को प्रश्रय दिया है। इससे सामाजिक विषमता बढ़ी है। अतः विश्वशांति व अहिंसक समाजरचना में 'साधन शुद्धि' एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। पूरी दुनिया शांति से जीना चाहती है, क्योंकि शांति के बिना विकास नहीं हो सकता। अनावश्यक संग्रहवृत्ति एवं व्यक्तिवाद ने मानव समाज में व्यर्थ की जरूरतों की सूची लंबी कर दी है। व्यक्तिवाद से संवेदनशीलता का ग्राफ भी निरंतर गिरता जा रहा है। स्वार्थपरता व्यक्तिवाद को हवा देती है। अतः अहिंसा का एक और महत्त्वपूर्ण सूत्र है - उपभोग का संयमीकरण।

परिग्रह की अप्रतिम लालसा में शोषण और शोषक का फर्क बढ़ता जाता है और यह स्थिति अशांति का मूल कारण बन जाती है। अतः शांति का मूल जैन धर्म में अधिक संग्रह का त्याग करके 'परिग्रहपरिमाणाणुव्रत' अंगीकार करने को कहा गया है। यही व्रत अंतहीन इच्छाओं को सीमित कर समाज में शोषणवृत्ति, अविश्वास, ईर्ष्या-द्वेष को समाप्त कर सकता है।

शांति की मैत्री संतोषधन से है। जो जितना तृष्णा रहित संतोषी होगा, वह निराकुल शांति का सहज वरण करेगा। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने तृष्णावान पुरुष पर एक यथार्थ कथन किया है कि परिग्रहप्रियता के कारण जीवन का काल बीतते हुए उसकी धनवृद्धि हो जाती है, जो उसको प्रिय लगती है, परंतु इस तृष्णा में वह यह भूल जाता है कि काल बीतने से उसकी आयु भी क्षीण हो रही है।

अयुवृंद्धिक्षयोत्कर्ष, हेतु कालस्य निर्गमम्।
वांच्छतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्।।५।। (इष्टोपदेश)

अतः शांति चाहने वाले को आयु का सार्थक उपयोग कर अपने पुरुषार्थ को केवल धनवृद्धि के लिए ही नहीं लगाना चाहिए अपितु धर्मवृद्धि भी करना चाहिए।

अहिंसा परम धर्म है। जीव के लिए अहिंसा से बढ़कर हितकारी मित्र और सुख-शांति देने वाला दूसरा कोई नहीं है -

अहिंसा परमोधर्मः अहिंसा परमो तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते।।
अहिंसा परमो यज्ञः अहिंसा परमो फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्।।

(महाभारत, अनुशासन-पर्व ५-२३ एवं ११६-२८)

महाभारत के शांतिपर्व में भी बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही गई है -

अहिंसा धर्म संयुक्ताः प्रचरेयुः सुरोत्तमाः
स वो दशः सेवितव्यो, मा वो धर्मः पदास्पृश्यते।

(शांतिपर्व, ३४०/८६)

अर्थात् अहिंसा धर्म का पालन जिस क्षेत्र में होता हो व्यक्ति को वहीं निवास करना चाहिए।

यदि विश्व के सभी राष्ट्र शांति और सौहार्द को पाना चाहते हों, तो उन्हें अहिंसा की प्रतिष्ठा का मापदंड अपनाकर परस्पर सहयोग और सहअस्तित्व की मूलधारा से जुड़ना होगा। विज्ञान की आणविक भट्टियां शांति की जय यात्राओं का मंगलघोष कर सकती हैं, यदि विज्ञान का नजरिया अहिंसा की मानवतावादी दृष्टि से जुड़ जाए। पूरी मनुष्य जाति को एक मंच पर लाकर संवेदना का पक्षधर बनाना होगा। आज अभिनव विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अभिनव अहिंसा की तलाश शुरू हो जानी चाहिए, तभी व्यक्ति के व्यक्तित्व को एक रचनात्मक दिशा मिल सकेगी। कब वह सुनहरा भविष्य दस्तक देगा जब अहिंसा का स्वरूप विज्ञान की पोथी में रेखांकित हो सकेगा?

हम उस कल की प्रतीक्षा में आशान्वित हैं।

- जवाहर वार्ड, बीना (जिला-सागर)

साधुचर्या

प्रश्न जो समाधान चाहते हैं

- श्रीमती इन्दु कान्त जैन

कड़वा सच हमेशा ही दर्द देता है, खासकर उस समय और भी अधिक जब वह किसी अपने के लिये बोला जा रहा हो। किन्तु जिस प्रकार कड़वी औषधि के बिना रोगों का उपचार सम्भव नहीं है, उसी प्रकार समाज में फैल रही भ्रष्ट नीतियों पर अंकुश लगाये बिना किसी भी धर्म का उद्धार सम्भव नहीं है। सत्य ही नई राहें तलाशने और उन पर चलने की हिम्मत देता है। यहाँ मैं आपको कुछ कड़वी सत्य घटनाओं से रूबरू करवा रही हूँ।

पहली घटना

हमारे नगर में इस वर्ष चातुर्मास का आयोजन था। पाँच छः मुनि महाराज, कुछ क्षुल्लक और कुछ आर्यिकायें संघ में आये हुये थे। मैं भी एक दिन शाम छः-सात बजे के लगभग मुनि महाराजों के दर्शन के लिये गई थी। मंदिर प्रांगण के ही कुछ कमरों में उनके ठहरने की व्यवस्था की गई थी। सभी मुनि महाराज अपने-अपने कमरों में कुछ श्रद्धालुओं से घिरे हुये बैठे थे। मैं कमरे के बाहर से ही उन्हें नमोस्तु! कहती, उनका आशीर्वाद लेकर आगे बढ़ रही थी। तभी देखा सामने आंगन में एक मुनिश्री तख्त पर विराजमान थे, शहर के कुछ धनाढ्य और गणमान्य व्यक्तियों से घिरे हुए। उनकी बातचीत से पता चला कि मुनिश्री किसी विधान की और अपनी दीक्षा जयन्ती के उपलक्ष में होने वाले भव्य समारोह की तैयारी में लगे हुये हैं। साथ ही मुनि महाराज रुपये-पैसे के हिसाब-किताब में भी लगे हुये थे कि किस प्रकार आस-पास के गाँवों और नगरों में स्थित उनके धनाढ्य भक्त उनके एक इशारे पर लाखों रुपये दे देंगे। मुनिश्री की आरती और पाद-प्रक्षालन की बोलियां कितने हजार की होंगी, यह भी मुनिश्री ही निर्धारित कर रहे थे।

मैं मंदिर में आ गई। आरती शुरू हो चुकी थी। आरती खत्म होते ही सभी पुरुष, महिलायें और बालिकायें अलग-अलग पंक्तियों में बैठ गये। पूछने पर पता चला कि हर रात्रि यहाँ मुनिश्री धर्म की क्लास लगाते हैं। थोड़ी ही देर में मुनिश्री ने मंदिर में प्रवेश किया। बीच-बीच में वे महिलाओं को फटकारते हुये चले जा रहे थे। किसी से कहते - 'ऐ बुढ़िया सीधे बैठ।' किसी से कहते - 'भाग यहां से!' एक महिला से बोले - 'सेठानी, आज तुम बहुत देर से आयीं।' उसके पश्चात् उन्होंने महिलाओं और बालिकाओं के मध्य घूम-घूमकर जोर-जोर से मंत्रों का उच्चारण करना आरम्भ कर दिया।

मैं वहाँ पन्द्रह-बीस मिनट ही ठहर सकी। मन में बचपन से बनी मुनि महाराज की शुद्ध, शान्त, पावन छवि मानो टूटकर बिखरने लगी थी। मुनिश्री का यह रूप तो हमारी कल्पना से बिल्कुल ही भिन्न था। मन में विचारों का मन्थन चलने लगा।

यह कैसे मुनिश्री हैं जो रुपये-पैसे के हिसाब-किताब में लगे हैं? अपने ही पाद-प्रक्षालन और आरती पर हजारों की बोलियां लगवा रहे हैं! रात्रि के समय महिलाओं और बालिकाओं के मध्य घूम-घूमकर जोर-जोर से मंत्र उच्चारण कर रहे हैं!

जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि महिलाओं और बालिकाओं को तो मुनिश्री के इतना निकट होना ही वर्जित है। रात्रि के समय तो मुनि महाराज मौन रहते हैं और एकान्त में स्वाध्याय करते हैं। जिस प्रकार वह अपशब्द बोल रहे थे क्या वह मुनि पद गरिमा के विपरीत नहीं था!

जैन धर्म में पंच परमेष्ठियों में पाँचवां स्थान साधुओं अर्थात् मुनियों को दिया गया है जो तप-साधना द्वारा आत्म-शुद्धि कर पूर्णतया विकारमुक्त हो जाते हैं। उनकी वाणी में इतना माधुर्य हो कि उनके निकट आने वाला क्लान्त व्यक्ति भी शीतलता का अनुभव करे और उनके निकट से गुजरने वाले व्यक्ति को भी सकारात्मक ऊर्जा की अनुभूति हो।

दूसरी घटना

धर्म का एक और विकृत रूप उस समय देखने को मिला जब एक शव को रथ पर बैठाकर घंटों नगर की सड़कों पर घुमाया जाता रहा। उसके पीछे मुनि संघ और उनके पीछे भक्तों की भीड़ होली खेलती हुई चली जा रही थी। पूछने पर पता चला कि ये क्षुल्लक जी हैं, जिन्हें तीन दिन पूर्व ही दीक्षा दी गई थी और आज उनका प्राणान्त हो गया है। उस वृद्ध पुरुष की आयु ८० वर्ष से ऊपर थी। वह प्रतिमाधारी थे और बीमार चल रहे थे। एक मुनिश्री ने घरवालों को सुझाव दिया कि हम उन्हें दीक्षा दिलवाकर उनका समाधि-मरण करवा देते हैं।

उस वृद्ध बीमार व्यक्ति को पद्मासन में बैठा दिया गया। उनको अन्न-जल और वस्त्रों का त्याग करवा दिया गया और उनके समक्ष समाधि-मरण पढ़ा जाने लगा। आज उनके इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त होने पर मुनिश्री अपनी इस उपलब्धि पर खुशियाँ मना रहे थे।

मैं सोचने लगी - 'जो व्यक्ति बीमार था, अर्द्ध मूर्छित अवस्था में था और शायद दीक्षा लेते समय अपनी सहमति व्यक्त करने की स्थिति में भी नहीं था, क्या इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को साधु दीक्षा दी जा सकती है? उस वृद्ध बीमार व्यक्ति को जब डॉक्टर की, आराम की, अन्न-जल और वस्त्रों की आवश्यकता थी, तब उन्हें लगातार तीन दिनों तक पद्मासन में बैठाकर मृत्यु-पाठ सुनाया जाता रहा। क्या यह धर्म का कुरूप चेहरा

नहीं है? क्या यह धर्म के नाम पर की गई हत्या नहीं है? मृत्यु के उपरान्त भी उनके शव को रथ पर बैठाकर घंटों सड़कों पर घुमाया जाता रहा जबकि जैन धर्म के अनुसार तो शरीर के शान्त होते ही उसे शीघ्र से शीघ्र पंच तत्त्व में विलीन कर दिया जाना चाहिये ताकि उसमें जीव न पड़ सकें।

तीसरी घटना

एक अन्य मुनिश्री का चौका लगाया जा रहा था। मैं भी उसमें उपस्थित थी। दो मुनियों को भोजन करवाना था। एक दिन पूर्व जब हम पता करने गये कि चौके की व्यवस्था किस प्रकार की जाये जिससे कोई त्रुटि न हो सके, मुनिश्री ने हमें एक महिला का नाम बता दिया कि 'आप उन्हें बुला लें, वह चौके की सारी व्यवस्था करवा देंगी।' हमने चौका दो दिन लगाया। पहली बार चौका लगा रहे थे, इसलिए मन में अत्यन्त उत्साह भी था। उस महिला के अनुसार प्रतिदिन २५ चीजें बननीं थीं। पाँच तरह की मेवा, पाँच तरह के फल, दो-तीन मिठाईयाँ, दूध, सात-आठ सब्जियाँ, कढ़ी-चावल, चटनी, केले की टिक्की आदि। शुद्ध घी और दूध की व्यवस्था की गई जो बड़ी मुश्किल से और मंहगे मिले। बाद में पता चला कि दोनों मुनि पिता-पुत्र हैं और यह महिला उनकी बहन हैं जो हर चौके में जाकर मुनिश्री की पसन्द के व्यंजन बनवाती हैं।

मैं सोचने लगी - 'हमने दो दिन जो आहार मुनिश्री को दिया, वह सात्विक तो था ही नहीं, वह तो राजसी भोजन था। आज जबकि आम आदमी एक दाल, एक सब्जी से दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पा रहा है, ऐसे में मुनि-महाराजों के चौके में प्रतिदिन १५-२० चीजें बन रही हैं, क्या यह उचित है और क्या यह त्यागी व्रतियों का आहार है?'

मेरी अल्प बुद्धि अपने ही विचारों और तर्कों में उलझने लगी। आज जबकि मुनि महाराज मोह-माया, राग-द्वेष जैसे विकारों से अपने आपको मुक्त नहीं कर पा रहे हैं, बस्तियों के बीच विचरण कर रहे हैं, हर दिन मीडिया में आ रहे हैं और अपने फोटो खिंचवा रहे हैं तो ऐसे में उनके द्वारा एक लंगोट धारण करने को परिग्रह कहना क्या उचित है? क्या जिन्हें मुनि मर्यादा का पूर्णतया ज्ञान ही न हो उन्हें हम इतने उच्च पद पर बैठाकर अपने ही समाज को गुमराह नहीं कर रहे हैं?

क्या आज समाज के प्रबुद्ध वर्ग का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह इन प्रश्नों के सही उत्तर समाज के समक्ष लाकर समाज को सही दिशा-निर्देश दे ताकि शिक्षित युवा वर्ग धर्म के मार्ग से भटके नहीं और जैन धर्म के विशुद्ध स्वरूप से परिचित हो सके?

- २१ दुली मोहल्ला, गुबरैला स्ट्रीट, फीरोजाबाद-२८३२०३

साधुचर्या

सुमेरूचन्द दिवाकर कहाँ हैं?

- श्री कैलाशचन्द जैन

शायद ही ऐसी कोई निष्पक्ष जैन पत्रिका हो, जिसमें वर्तमान वीतराग जिनेश्वर के लघुनन्दन, हमारी श्रद्धा एवं आराधना की जीवन्त इकाई साधु संस्था के चारित्रिक पतन की हृदय विदारक घटनाओं पर गंभीर चिन्तन एवं स्थितिकरण के संभावित उपायों पर विचार विमर्श न हो रहा हो। लेकिन यह सब कितना प्रभावकारी है, संदेहास्पद है। यह जैन समाज का दुर्भाग्य है कि बहुमान्य आचार्यों के मौन और प्रबुद्ध श्रावक वर्ग की निष्क्रियता के कारण ये सुझाव मात्र सुझाव ही रह जाते हैं। एक दूसरा वर्ग भी जो दुर्भाग्य से बहुसंख्यक है, वह साधुचर्या के आर्षमार्गीय नियमों से अनभिज्ञ है तथा अपनी प्रतिष्ठा एवं स्वार्थ सिद्धि के लिये पवित्र साधु संस्था का दुरुपयोग कर रहा है।

इस कारण उस भव्य आत्मा **सुमेरूचन्द दिवाकर** की कमी खलती है जो साधु के शिथिलाचार के परिष्कार हेतु जीवन भर समर्पित रहे। जहाँ से भी सूचना मिलती वे तत्काल वहाँ पहुँच जाते और साधु का स्थितिकरण करते। जहाँ वे एक प्रकांड विद्वान थे वहीं एक आदर्शव्रती श्रावक भी थे।

इस युग में साधु संस्था को पुनर्जीवित करने वाले महान तपस्वी आचार्य शान्तिसागर जी के अनन्य भक्त होते हुये थी वह अन्ध-श्रद्धा ग्रसित नहीं थे। वह प्रबुद्ध व्रती, क्रान्तिकारी गृहस्थ विद्वानों यथा दौलतराम, जयचन्द, बनारसीदास आदि की श्रृंखला की अन्तिम कड़ी थे।

ईश्वर की सर्व शक्तिमान सत्ता को नकारने वाले, पुरुषार्थ प्रमुख जैन सिद्धांत के अनुयायी, सिंह श्रावक कब तक सियार की माँद में छिपे रहकर अपने सच्चे स्वरूप को भूलने की गलती करते रहेंगे? पानी सिर से ऊपर जा चुका है। यदि अब भी हम नहीं चेते तो धर्म की जो क्षति होगी, अपूर्णनीय होगी और प्राचीन काल का वह इतिहास दुहराने में देर नहीं होगी जबकि श्रावकों को शूद्र से भी नीचे पंचम वर्ग की निकृष्टतम स्थिति में धकेल दिया गया था।

क्या जैन संघ की यही नियति है ?

-३७/७बी, खेलातबाबू लेन, कोलकाता-७०००07

[लेखक एक वयोवृद्ध धर्मनिष्ठ श्रावक हैं और विभिन्न संस्थानों एवं धार्मिक आयोजनों से सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। श्रीमती इन्दु कान्त जैन ने जो प्रश्न उठाये हैं और श्री कैलाशचन्द जैन ने जो पीड़ा व्यक्त की है, वह एक गम्भीर स्थिति की ओर इंगित करते हैं जिस पर समाज के प्रबुद्ध वर्ग को ध्यान देना आवश्यक है। - सम्पादक]

साधक सिद्ध प्रवीण रहें!

- साहित्यभूषण डॉ० परमानन्द जड़िया

महावीर अधीर हुये न कभी, तप त्याग का मार्ग दिखाते रहे।
कोई जन्म से ऊँचा व नीचा नहीं, समता का ये पाठ पढ़ाते रहे।।
सब प्राणियों में दिखे आत्म-स्वरूप सुलोचन दिव्य बनाते रहे।
'परमानंद' संचय-वृत्ति न हो, यह बात सदा समझाते रहे।।
मुनि योगियों में न विकार रहे, बस आत्मस्वरूप में लीन रहें।
कुछ चाह न हो धन वैभव की, कभी वासना के न अधीन रहें।।
रमते रहें नित्य, न वास करें, किसी ठौर न किंचित दीन रहें।
निज धर्म का ज्ञान रहे 'परमानंद' साधक सिद्ध प्रवीण रहें।।
हम जैन हैं तो तपी त्यागी बनें, धन वैभव से नित दूर रहें।
परपीड़न औ उत्पीड़न से बचते रहें साधक शूर रहें।।
करुणा ममता का न त्याग करें, शुचिता से सदा भरपूर रहें।
'परमानंद' जीव दया उर में रखें, कर्म से नित अक्रूर रहें।।
फल-फूल अनाज से पेट भरें, कभी आमिष का न प्रयोग करें।
'परमानंद' इन्द्रिय निग्रह का सदा ध्यान रखें, न कुभोग करें।।
उर अन्तर हो छल मुक्त सदा चित वृत्तियों को तो निरोग करें।
सब के प्रति आदर भाव रखें, हम से न घृणा कभी लोग करें।।

-१८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ

दीपावली

- श्री अजित कुमार वर्मा

आओ मिलकर दीप जलायें,
जगर-मगर धरती हो जाये।
दीपों से दीप जलाकर हम,
घर-चौबारा उजियार करें।
भेदभाव हम सभी भुलाकर,
मन का दूर अंधियार करें।
हँसी, खुशी त्योहार मनायें।
बम पटाखों का होता शोर,
रॉकेट जाते नभ की ओर।
जगमग-जगमग दीवाली में,
आतिशबाज़ी का होता ज़ोर।
सतर्कता पर बरती जाये।
दीवाली के शुभ प्रकाश में,
बिखरती ओंठों पर मुस्कान।
रमा, विनायक के पूजन से,
मिले सुबुद्धि, धन का वरदान।
रिद्धि-सिद्धि घर-आंगन आये।
आओ मिलकर दीप जलायें।
जगर-मगर धरती हो जाये।

-२४६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

मांग रहा मैं क्षमा

– श्री राजीव कान्त जैन

प्रभु की भूल कि बनाया भूलों का पुलिंदा मानव
भूल में भूल कि जगा क्षुधा, बनाया दरिंदा मानव
जगे तन/मन क्षुधा, होये समर, बींधे परिंदा मानव
ज्यों ज़ख्म को लेप, दे विवेक बनाया कारिंदा मानव।

हर काली रात का अन्त सूर्य का सुखद प्रकाश
प्रत्येक पतझड़ का बसन्त, धरा का अनन्त आकाश
रावण का राम, नरकासुर का माँ दुर्गे द्वारा विनाश
संसार-चक्र चले जब मिले भूल को क्षमा का पाश।

है ये विधान, मैं तो प्राणी तुच्छ, भूलों का फूल
जाने में, अन्जाने में, करता रहा हूँ अनेकों भूल
'क्षमावाणी' पर्व पर नतमस्तक मांग रहा क्षमादान
वो ही महान बड़े जो न देते पर-भूलों को तूल।

आज मांग रहा मैं क्षमा तुम्हारे हृदय विशाल से
कर क्षमा करो मुक्त मुझे गत-भूलों के जाल से
कारण मेरे चुभे हों जो तुम्हारे हृदय में शूल
करो क्षमा मुझे अबोध अज्ञानी नालायक मान के।

– निदेशक
अनुसंधान अभिकल्प और मानक संस्थान
(रेल मंत्रालय), लखनऊ

शोधादर्श का सम्पादक मंडल सभी सुहृदय लेखकों व पाठकों से इसी भाव से क्षमा-ज्ञापन करता है। –सम्पादक

माटी की पुकार

- श्री अमरनाथ

माटी से तू जन्मा पगले! माटी में ही तू सो ले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
कहाँ गई वो तेरी माता, जिसने दूध पिलाया था?
हुई कहाँ गुम तेरी बहिना, जिसने तिलक सजाया था?
छोड़ गई कैसे वो पत्नी, जिसने साथ निबाहा था?
कहाँ ठुमकती लाड़ो बिटिया, जिसे देख हर्षाया था?
गए सभी अब तुझे छोड़कर, क्या समझा है तू भोले?
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
मुझे सौंपकर काया तेरी, आज तुझे सब भूल गए
बहा एक दो रस्मी आँसू, अपने घर सब लौट गए
तोड़े तुझसे सारे रिश्ते, गए ढूँढने आज नए
भाई-बहिना, पिता-पुत्र के, अब परिभाषित शब्द नए
नए गढ़ेंगे फिर सब रिश्ते, बदलेंगे अब सब चोले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
इस दुनिया के सारे रिश्ते, छल, मायावी झूठे हैं
सभी स्वार्थ में अंधे होते, लालच में सब डूबे हैं
बने काँच के घट सब रिश्ते, जरा ठेस से टूटे हैं
ज्ञानी, ध्यानी, संत, साधु भी, नाहीं बचे अछूते हैं
रिश्तों की माया ठगिनी यह, देती रहती हिचकौले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
इस माटी से बनता तन है, माटी में मिल जाना है
बन कस्तूरी मृग तू भागा, तथ्य न यह पहचाना है
माटी का ही चाक बना जग, घूम वहीं रह जाना है
चाक करे अभिमान जगत में, मैंने भाँड बनाना है
देखा वह कुम्हार गढ़े जो, तुझको ही हौले हौले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
लिपट-लिपट तेरे पैरों से, बार-बार आगाह किया
भूल नहीं तू मुझ माटी को, हूँ मैं सच, यह जग मिथ्या

लोभ-मोह की सँडसी में फँस, भूल गया था सब क्रिया
माटी ही किलकारी तेरी, माटी ही तेरी निंदिया
बन जायेंगे इस काया के, अग्नि पके माटी गोले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
रहा भागता तू जीवन भर, क्या पाया, क्या खोया है?
एक दिवस भी क्या तू सुख से, मीठी निद्रा सोया है?
एक चीज गर हाथ पड़ी तो, दूजी को तू रोया है
मिली कहाँ थी शान्ति तुझे कब, कहाँ अमृतफल बोया है?
पछता करतूतों पर अपनी, करनी पर तू अब रो ले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
जिसके पीछे तू भागा था, क्या तूने वह प्राप्त किया?
इस भागमभागी में तूने, जीवन निज बर्बाद किया
भूल गया था मुझको, प्रभु को, गर्व-दम्भ करता मिथ्या
थककर जब तू चूर हो गया, आकर तब मुझसे लिपटा
आया माँ की अब तू गोद, अब तो चैन से तू सो ले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
आया माँ की गोद आज तू, तुझे यहीं पर आना था
सोजा मेरे लाल लाड़ले! तेरा यही घराना था
सता चुका जग तुझको उतना, जितना उसे सताना था
पास न कोई आए बेटे! समझो जग बौराना था
पागलपन से तू छूटा है, अब तो मस्ती में सो ले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।
भूल सभी जा दुख चिन्ता तू, मीठी निद्रा में सो ले
लोरी गाती हूँ मैं पगले! दे थपकी हौले-हौले
जब जागेगा तू ताजा मन, चंदन रस मन में घोले
रोंपू मुझको बज बना मैं, बीच कोख, जो मुँह खोले।
बना फूल तू फिर फूलेगा, सारा जीवन रस घोले।
तू माटी का पुतला पगले! माटी तुझसे यह बोले।

- ४०१-ए, उदयन-प्रथम, बंगला बाजार, लखनऊ -२

पुष्पेन्दु तुम्हें छूकर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया

– डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'

पुष्पेन्दु तुम्हें छू कर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया।
गर्म उसांसों से कवि तेरी, गीतों का संसार बन गया।।
काँटों में भी रह कर तुमने जग में काव्य सुमन बरसाये,
रह कर तृषित स्वयं जीवन में मानस पंकज कमल खिलाये।
विषपायी शंकर बन तुमने दुख का गरल स्वयं पी डाला,
'दुख भी मानव की सम्पत्ति है' कह दुख को भी गरिमा दे डाला।
मानस मंथन पीड़ाओं का पीड़ा का उपचार बन गया।
पुष्पेन्दु तुम्हें छू कर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया।।
गर्म उसांसों से कवि तेरी, गीतों का संसार बन गया।
तुम मानव थे सच्चे जग में, मानवता था धर्म तुम्हारा,
मानवता से परिपूरित था जीवन में हर कर्म तुम्हारा,
प्रतिबिंबित हो जिसमें मानव वह ईश्वर स्वीकार तुम्हें था,
स्वर्ग मोक्ष से पहले जीवित मानवता से प्यार तुम्हें था।
अनुपम मानवता का वाहक मानव का आधार बन गया।
पुष्पेन्दु तुम्हें छूकर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया।
गर्म उसांसों से कवि तेरी, गीतों का संसार बन गया।।
मुस्कानों के मधुर क्षणों में तुमने अपना हर्ष लुटाया,
किन्तु आँसुओं के आने पर तुमने उसे स्वयं अपनाया,
आँसू थे पतवार तुम्हारी जीवन नैय्या को खेते थे,
जब जब भाव व्यथित होते थे, भार तुम्हारा ले लेते थे।
अश्रु तपे अन्तर में इतना, उनसे मेघ मल्हार बन गया।
पुष्पेन्दु तुम्हें छूकर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया।
गर्म उसांसों से कवि तेरी, गीतों का संसार बन गया।।
पूर्ण आत्म गौरव आभा से सदा चमकते रहे गगन में,
टूट गये झुके नहीं थे कभी कहीं से तुम जीवन में,
सबने हँसते-से ही कवि को देखा, उसका घाव न देखा,
जीवन को जो निगल रहा था बढ़ता हुआ तनाव न देखा।
तेरी कविताओं का संग्रह जीवन का उपहार बन गया।

पुष्पेन्दु तुम्हें छूकर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया
गर्म उसांसों से कवि तेरी, गीतों का संसार बन गया।।
काव्य सृजन जीवन था तेरा, कल की कुछ परवाह नहीं थी?
मिले प्रशंसा जग से तुमको इसकी कुछ भी चाह नहीं थी,
थे निरपेक्ष, यही कहते थे नियम प्रकृति के हैं अविनश्वर,
'अवसर आते ही गूंज उठेंगे स्वतः मेरी कविताओं के स्वर।'
अवसर आया और तुम्हारा सुखद स्वप्न साकार हो गया।
पुष्पेन्दु तुम्हें छू कर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया।
गर्म उसांसों से कवि तेरी, गीतों का संसार बन गया।।

- डी ११/१६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

[कविवर फूलचंद जैन 'पुष्पेन्दु' की ६७वीं जन्मजयन्ती (२२-८-२०१०) पर आयोजित समारोह में डॉ. 'प्रशान्त' ने ये उद्गार व्यक्त किये। इस अवसर पर प्रशान्त' जी का सार्वजनिक अभिनन्दन भी किया गया था। -सम्पादक]

भगवान महावीर की निर्वाण स्थली पावा.......शेष पृष्ठ २२ का..

संख्या में बसे हुए मिलते हैं। इससे भी प्रतीत होता है कि मल्लों का प्रसिद्ध गणराज्य यहीं रहा होगा।

सभी इतिहास-वेत्ताओं, पुरातत्व-विदों, प्रबुद्ध विद्वज्जनों तथा स्व० आचार्य श्री देशभूषण जी, स्व० आचार्य श्री विमल सागरजी तथा इनके शिष्योत्तम आचार्य श्री भरतसागर जी, राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द मुनि जी, स्व० आचार्य श्री हस्तीमल जी, आचार्य श्री नगराज जी, आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि जी आदि अनेक जैनाचार्य संतों ने भी इस स्थल को ही भगवान महावीर स्वामी की सही निर्वाण भूमि स्वीकार किया है। तथापि अभी पावानगर के प्राचीन टीलों का बड़े पैमाने पर पुरा-उत्खनन किया जाना आवश्यक है ताकि सम्पूर्ण जैन समाज इसे निर्विवाद रूप से भगवान महावीर के सही निर्वाण कल्याणक क्षेत्र के रूप में मान्य कर सके।

[पावा के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा की गई शोध-खोज के सम्बन्ध में प्रो. अनन्त प्रसाद जैन द्वारा सम्पादित **निर्वाणभूमि पावा** (गोरखपुर से १९७३ में प्रकाशित) अवलोकनीय है।

डॉ० शिवप्रसाद का इसी अंक में प्रकाशित तद्विषयक लेख विषय पर सम्यक् प्रकाश डालता है। - सम्पादक]

साहित्य परिचय

'दर्द का रिश्ता' (कहानी संग्रह), लेखिका - श्रीमती इन्दु कान्त जैन (परिचय **शोधादर्श** ७० में पृष्ठ ५० और ५५-५७ पर भी अवलोकनीय)

साहित्यभूषण डॉ० परमानन्द जड़िया, लखनऊ-

श्रीमती इन्दु कान्त जैन का कथा-संग्रह **'दर्द का रिश्ता'** देखने, पढ़ने तथा समझने का अवसर मिला। इसमें सोलह कहानियां हैं, जिनके नाम हैं - काश हम भी कुत्ते होते, एक थी पगली, माँ, प्रायश्चित, किरिच, अनाथ, चुटकी भर सिन्दूर, प्रतिशोध : गुनहगार कौन?, बहकते कदम, अपना घर, पश्चाताप, आसरा, अधूरे ख़्वाब, शीशे का महल, भाग्योदय, तथा देवदासी।

ये सभी सामाजिक कहानियां हैं और लगभग सभी मध्यम वर्ग तथा नगरीय जीवन से सम्बन्धित हैं। इन कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त अनेकानेक विसंगतियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षिक किया गया है। प्रथम कहानी में अंग्रेजों की देखादेखी कुत्तों के बढ़ते सम्मान तथा वृद्धों की उपेक्षा का सुन्दर चित्रण किया गया है। कुछेक कहानियां दुःखान्त भी हैं। भारतीय परम्परा दुखान्त कहानियों से विरत रहने का निर्देश देती है, परन्तु वर्तमान में दुःखान्त कहानियां भी लिखी जा रही हैं। आकार की दृष्टि से ये कहानियां मुझे ठीक लगीं। न ज़्यादा बड़ी और न ज़्यादा छोटी। वर्णन शैली रोचक है।

समाज की नाड़ी पर साहित्यकार का हाथ रहना चाहिये। इस दृष्टि से कहानी-लेखिका इन्दु कान्त जैन खरी उतरती हैं। उन्होंने मध्यम वर्ग की गतिविधियों को बड़ी बारीकी से देखा है और उनके चित्रांकन में उन्हें यथेष्ट सफलता मिली है। वर्णन बड़े सुखद हैं। भाषा में चारूता है। ये कहानियां यथार्थ वादी हैं। समाज की विद्रूपता का दर्पण हैं। परन्तु नग्न सत्य का प्रस्तुतीकरण ही साहित्य नहीं है। उसके साथ आदर्श तथा उद्देश्य का पुट भी होना चाहिए। आदर्श की दृष्टि से **माँ** एक अच्छी कहानी है। **प्रायश्चित** कहानी भी अच्छी लगी। परन्तु **'अपना घर'** की शुभ्रा एक मूर्ख महिला है, जो तलाक की त्रासदी झेलकर भी नहीं चेतती और अपने दूसरे पति की सारी शर्तें आँख मूद कर मान लेती है। नौकरी छोड़कर अपने हाथ स्वयं काट लेती है। वह न तो अपने दूसरे पति का मन जीत पाती है और न बच्चों को अपने वश में कर पाती है। पति उस पर संदेह करते रहते हैं और वह सब कुछ चुपचाप सहती रहती है। मूर्ख और निष्क्रिय लोगों की भगवान भी सहायता नहीं करते।

'**शीशे का महल**' एक ऐसी कहानी है जिसकी नायिका का चरित्र मानवीय धरातल से बहुत ऊँचा उठ जाता है। उसके पति पहले से ही विवाहित हैं और एक बेटी के बाप हैं। यह जानकर भी वह मौन रहती है। ससुराल की धन-दौलत और प्रतिष्ठा में सब कुछ भूल कर दो साल तक अपने मायके वालों को अपना दुःख- दर्द नहीं बताती और फ़ोन पर कह देती है मेरे पति मुझे बहुत प्यार करते हैं। उसका सम्पूर्ण जीवन कैसे कटा होगा, कुछ पता नहीं। यह एक अस्वाभाविक तथा अपनो वैज्ञानिक कहानी है।

'**पगली**' कहानी एक स्वेच्छाचारी उच्छृंखल लड़की की कहानी है जो अपने माँ-बाप का अनुशासन नहीं मानती। माडलिंग का धंधा करने लगती है। उसके माँ-बाप बदनामी के डर से अपना ट्रांसफर कराकर अन्यत्र भाग गये। उसकी जो दुर्गति हुई, उसके लिये वह स्वयं जिम्मेदार है। यह समाज का नग्न सत्य है। बुरे काम का बुरा नतीजा।

इन्दु जी का यह प्रथम कहानी संग्रह है। उनमें कहानी लेखिका के समस्त गुण विद्यमान हैं। कुतूहल जो कहानी का विशिष्ट गुण है, वह सर्वत्र विद्यमान है। परन्तु मेरा यह परामर्श है कि मध्यम वर्ग तथा नगरीय जीवन से बाहर निकल कर गांव की ओर भी देखना चाहिये। प्रकृति निरीक्षण का भी प्रयास होना चाहिये। समाज के भोंडे और अनैतिक प्रसंगों को स्वस्थ दिशा दी जानी चाहिये। आदर्श तथा उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखना ही समाज के लिए हितकर होगा। 'इन्दु' मेरी बेटी के समान है। इस प्रथम कहानी संग्रह के प्रकाशन पर मेरी अशेष मंगल कामनायें तथा आशीर्वाद! यह सचित्र कहानी-संग्रह मुद्रण तथा गेटअप की दृष्टि से मनभावन है। सभी कहानियां यथार्थ के धरातल को स्पर्श करती हैं और साथ ही पाठक को कुछ सोचने को विवश करती हैं। रोचकता उनका प्रधान गुण है। आशा है पाठकों में कृति का सम्मान होगा।

श्री मुकेश जैन, सं. वर्णी प्रवचन, मुजफ्फरनगर-

'दर्द का रिश्ता' वास्तव में रिश्तों के दर्द को उजागर करने वाली कहानियों का संग्रह है। लेखिका ने इन कहानियों में मार्मिक समस्याओं को लयबद्धता के साथ बहुत सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है। मेरी ओर से बहिन इन्दु जैन को बहुत बहुत बधाई!

साहित्य सत्कार

मनीषियों की दृष्टि में आत्मानुभूति एवं धर्म ध्यान : ले. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल; प्र.- समन्वयवाणी जिनागम शोध संस्थान, १२६, जादोंन नगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर-३०२०१८; सितम्बर २०१०; पृष्ठ ११६ + ८; मूल्य रु. २०/-

विद्वान लेखक डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल ने चारों अनुयोगों के ७० ग्रन्थों का अध्ययन कर उनमें से आत्मानुभूति, मन की एकाग्रता और ध्यान के बिन्दुओं पर आचार्य भगवन्तों और प्रख्यात विद्वान मनीषियों के अनुभव तथा दिशा निर्देश सूचक ग्रन्थ, श्लोक, दोहा एवं टीका के उद्धरणों का विभिन्न शीर्षकों में वर्गीकरण किया है ताकि इन बिन्दुओं पर आगमिक स्थिति स्पष्ट हो सके। संकलन तीन अध्यायों में क्रमशः आत्मानुभूति, धर्मध्यान और मोहनाश हेतु मन स्थिर करने के उपाय, शीर्षकों के अन्तर्गत है। लेखक ने इस संकलन का उद्देश्य अपने वक्तव्य (मनोगत) में स्पष्ट किया है कि समाज में दार्शनिक सिद्धान्तों की सम्यक् जानकारी हो सके और सभी का जीवन धर्ममय, पावन पवित्र होकर कषायों के उद्रेक से मुक्त हो।

इसका सम्पादन पं. शांति कुमार पाटील द्वारा किया गया है। प्रस्तावना प. मनोहर मारवडकर ने दी है और सैद्धान्तिक अध्ययन हेतु ऐसे संकलन की आवश्यकता एवं उपयोगिता सूचित की है।

श्रीमती रंजना बंसल ने अवगत कराया है कि इस महत्वपूर्ण कृति का लोकार्पण दिनांक ३ अक्टूबर को जयपुर में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के मंच से सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. हुकम चंद्र भारिल्ल द्वारा किया गया था।

साहित्य भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया की कृतियां :

१. अतीत के आंगन में : यह संस्मरणात्मक शैली में निबद्ध है। लेखक ने स्वयं ही इसको संस्मरणों की फुलवारी कहा है। पिछली शताब्दी में सामाजिक और राजनीतिक जीवन का एक सजग पर्यवेक्षक की दृष्टि से प्रस्तुत चित्र इसमें प्राप्त होता है। अपने पिताजी श्री बैजनाथ जड़िया के सम्बन्ध में उन्होंने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की है। वह एक कर्मठ व्यक्ति थे जो असफलताओं के बीच निश्चल रहे और शतायु हुये।

२. व्यंग्य विधाय नमः : यह पुस्तक रोचक सामग्री प्रस्तुत करती है। सभी रचनायें anecdote शैली में है। **हाथ, आंख, पूंछ** और **आम** पर चित्रण प्रताप नारायण मिश्र की **बात** की याद दिलाते हैं।

एक प्रसंग में आपने लिखा है - बैठा सोच रहा हूं क्यों लिखता हूं और किसके लिये! यह स्थिति प्रायः सभी चिन्तनशील लेखकों की होती है। कोई भी व्यक्ति विचार प्रवणता के कारण सोचता है और उन विचारों को लेखबद्ध भी करता है। यह किसी और के लिए नहीं वरन् अपने स्वयं के लिये होता है। इसीलिए लेखन प्रायः स्वान्तः सुखाय होता है। यदि वह दूसरों को भी आनन्द प्रदान करता है अथवा उनको भी विचार करने के लिए प्रेरित करता है तो यह एक प्रकार का बोनस है।

३. काजल की कोठरी : इस कथा संग्रह में २६ कहानियां संग्रहीत हैं। इन कहानियों में समाज की किसी-न-किसी समस्या को रेखांकित किया गया है। ये कहानियां यथार्थ परक हैं और प्रबोध दायक भी हैं । उदाहरण के रूप में "ऊँट पहाड़ के नीचे" और "नारी की विवशता" का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। "काजल की कोठरी" कहानी के आधार पर इस कथा संग्रह का नामकरण किया गया है। इसका सार तत्व यह है कि हिंसा, क्रूरता और निर्दयता किसी-न-किसी प्रकार व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं और उसे प्रायश्चित का बोध भी कराती हैं।

४. शिव स्तवन : शिव शंकर की स्तुति में यह भक्ति काव्य कवित्त, सवैया, दोहा, रोला, पद और सोरठा छन्दों में निबद्ध किया गया है।

उपरोक्त चारों पुस्तकें मधूलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८ से क्रमशः जुलाई, अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर २०१० में प्रकाशित हैं।

श्री स्वरोदय : सं. आचार्य अशोक सहजानन्द; प्र. मेघ प्रकाशन, २३६, गली कुंजस, दरीबाकलां, चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६; पृष्ठ ११२; २०१०; मूल्य १५०/-

किन्हीं मुनि चिदानन्द ने **श्री स्वरोदय** काव्य की रचना विक्रम संवत् १६०५ या १६०७ में की थी। यह हिन्दी में है। इसका संकलन और सम्पादन आचार्य अशोक सहजानन्द द्वारा किया गया है। मूल पाठ के साथ इन्होंने इसका भावार्थ भी दिया है। साथ ही एक अध्याय "ज्योतिष शास्त्र और स्वरयोग" पर भी जोड़ दिया है। ज्योतिष

के ग्रन्थों के अनुरूप इसमें बहुत सी ऐसी बातें बताई गई हैं जो अन्ध-विश्वास का पोषण करती हैं। श्वाच्छोश्वास के आधार से योग क्रिया से सम्बन्धित कुछ उपयोगी जानकारी भी इसमें प्राप्त होती है।

सजह आनन्द : सं. आचार्य अशोक सहजानन्द; प्र. मेघ प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ १६४; मूल्य ४०/-

सहज आनन्द पत्रिका का सितम्बर २०१० का यह **चक्रवर्ती भरत विशेषांक** है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत के सम्बन्ध में विविध पौराणिक जानकारी दी गई है और कुछ पुरातात्विक संदर्भ भी दिये गये हैं। 'चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य' शीर्षक हमारा लेख भी इसमें सम्मिलित किया गया है, जिसमें यह सूचित किया गया है कि उपलब्ध साहित्यिक उल्लेख चक्रवर्ती भरत के व्यक्तित्व को एक वैचारिक ऐतिहासिकता प्रदान करते प्रतीत होते हैं; यह वैचारिक अवधारणा किसी भौगोलिक सीमा से आबद्ध नहीं थी वरन् यह विश्वव्यापी थी और विभिन्न भूभागों में वहां के स्थानिक परिवेश के सापेक्ष उसकी व्याप्ति हुई थी।

जैन विद्या : सं. डॉ. कमल चन्द सोगाणी, श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका; प्र. जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारक जी, सवाई राम सिंह रोड, जयपुर-३०२००४

जैन विद्या संस्थान की वार्षिक शोध पत्रिका **जैन विद्या** का मार्च २०१० का यह अंक **आचार्य प्रभाचन्द्र विशेषांक** के रूप में प्रकाशित है। न्याय और व्याकरण के क्षेत्र में आचार्य प्रभाचन्द्र, जिनका समय ९८० से १०६५ ई. अनुमानित है, एक बहु चर्चित विद्वान रहे हैं। इस अंक में आचार्य प्रभाचन्द्र के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में १४ विद्वत्तापूर्ण लेख संकलित हैं। स्व. श्री रमा कान्त जैन द्वारा "पण्डित प्रभाचन्द्र" शीर्षक से लेख इस अंक के लिये विशेष रूप से निबद्ध किया गया था।

दिव्य जीवन : ले. श्री केवलचन्द जैन; प्र. ज्ञानमंदिर, सिटी रोड, मदनगंज-किशनगढ़-३०५८०१; २०१०; पृ. २३२; मूल्य ६०/-

अपने स्वाध्याय के आधार पर विभिन्न विषयों पर लेखक ने उद्धरण संकलित किये हैं। इसमें किसी सम्प्रदाय विशेष की पक्षधरता नहीं है यद्यपि प्राथमिकता जैनत्व को दी गई है।

बन्दे तद्गुण लब्धये : ले. श्री सतीश जैन; प्र. अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट, यूनीक हाऊस, तृतीय मंजिल, २५-५ए, ब्रेलवी रोड, फोर्ट, मुम्बई-४००००१; पृष्ठ २२४; २०१०

यह पुस्तक परम पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज के जीवन चरित्र एवं उनके द्वारा किये गये जैनधर्म की प्रभावना के कार्य का यथासम्भव परिचय कराने के उद्देश्य से लिखी गई है। इसमें महाराज के जन्म से ७५ वर्ष की आयु तक के जीवन और कृतित्व का विवरण दिया गया है। १६ जून, १९९९ ई. को आचार्य श्री ने अपनी आयु के ७५ वर्ष एवं दीक्षा के ५५ वर्ष पूरे करने पर नियम सल्लेखना घोषित की थी। तदपि आचार्य श्री उसके बाद भी जैन धर्म की प्रभावना के कार्यक्रम में कार्यरत और गतिशील रहे हैं। लेखक ने २००० ई. के पश्चात् के विशेष कार्यक्रमों और घटनाओं को पुस्तक के अंत में संक्षिप्त विवरण के साथ उल्लिखित किया है, इस प्रकार प्रायः २०१० ई. तक का आचार्य श्री के सम्बन्ध में आवश्यक विवरण इस पुस्तक में प्राप्त हो जाता है। पुस्तक सचित्र है।

जिनशासन की दिव्य विभूतियां : प्र. श्री सम्पतराज धोक, मंत्री, श्री मल्लेश्वरम् वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ, 7th Cross Sampagic Road, Malleshwaram, Bangaluru- ५६०००३; २०१०; पृ. ५१२, सचित्र

आचार्य श्री हस्तीमल जी की शिष्य परम्परा में दीक्षित पंण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी का सन् २००७ ई. में मल्लेश्वरम्, बंगलौर, में चातुर्मास हुआ था। उसी के उपलक्ष में इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है। इसमें ८० स्थानकवासी साधु-सन्तों का परिचय दिया गया है। इन सन्तों का परिचय अन्यत्र एक साथ उपलब्ध नहीं है। प्रमुख त्यौहारों एवं पर्वों का परिचय भी इसमें संकलित है।

मुक्ति की ओर : ले. श्री जितेन्द्र कुमार जैन; प्र. वैभव जैन-काशी जैन, वैशाली विला, ४६६, महावीर जी नगर (कमला नगर), मेरठ; २०१०; पृ. ६२४, सचित्र

इस पुस्तक में २४ तीर्थंकरों का जीवन चरित्र पुराणों के आधार पर दिया गया है। प्रत्येक तीर्थंकर के वर्णन के साथ लेखक द्वारा कविता में गुणगान किया गया है और उपलब्ध प्रतिमा आदि के चित्र भी दिये गये हैं। पौराणिक आख्यानों में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी है। लेखक ने इस ग्रन्थ को शास्त्र के रूप में कपड़े के वेष्ठन में लपेटकर वितरित किया है ताकि सामान्य श्रावक इसको शास्त्र के रूप में समादृत करें।

भक्तामर स्तोत्र : (सचित्र, कथा सहित); प्र. सन्मति ट्रस्ट, २१/बी, कहान नगर, एन.सी. केलकर रोड, दादर (प.), मुम्बई-४०००२८; पृ. ६४; मूल्य १५०/-

श्रीमानतुंगाचार्य द्वारा रचित सुप्रसिद्ध **भक्तामर स्तोत्र** पर श्री जयचन्द्र जी छाबड़ा की भाषा वचनिका के साथ, प्रत्येक श्लोक को स्पष्ट करते हुये चित्रों के साथ, इसका प्रकाशन किया गया है। इसका संयोजन श्री देवेन्द्र जैन और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती सुधा जैन द्वारा किया गया है।

श्री देवेन्द्र जैन ने अपने पिता स्व. पं. कुन्दनलाल जी जैन शास्त्री (१८६१-१६६५) का परिचय भी दिया है। उन्हीं की स्मृति में सन्मति ट्रस्ट की स्थापना की गई है जिसके अन्तर्गत हिन्दी में विभिन्न विषयों पर दुर्लभ जैन ग्रन्थों और पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। प्रस्तुत कृति के अतिरिक्त २७ और ग्रन्थ सन्मति ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की सुन्दर प्रस्तुति के लिए सन्मति ट्रस्ट के संयोजक अभिनन्दन के पात्र हैं।

कुसुमांजलि : सं. श्री अजित जैन; प्र. आत्म वल्लभ सोसायटी, एम-२/७७, रोहणी, सेक्टर १३, दिल्ली-११००८५

इस पत्रिका में इसकी प्रेरणा साध्वी डॉ. सुभाष का जैन धर्म की प्राचीनता पर लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की पुस्तक Jainism, The Oldest Living Religion का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। इन भ्रान्तियों का कि महावीर अथवा पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक हैं, जैन धर्म वैदिक परम्परा के हिन्दू धर्म की शाखा है, तथा जैन धर्म, बौद्ध धर्म की शाखा है, का समुचित रूप से निराकरण किया गया है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद का बुलेटिन : मई २०१०, सं. डॉ. विजय कुमार जैन; प्र. प्राचार्य अरुण कुमार जैन, महामंत्री शास्त्री परिषद, ६४, भजन नगर, अजमेर रोड, ब्यावर-३०५१०१

इस बुलेटिन के इस अंक में महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित है जो जैन धर्म के इतिहास, सिद्धान्त और आचार के ऊपर समुचित प्रकाश डालते हैं। भगवान महावीर की प्रथम सहस्राब्दी पर हमारा लेख ईस्वी पूर्व ६०० से ४०० ई. सन् पर्यन्त जैन धर्म के इतिहास पर प्रकाश डालता है। डॉ० वृषभ प्रसाद जैन ने जैन गृहस्थ, शास्त्र और

शास्त्रीय परम्परा पर गहन चिन्तन की आवश्यकता को अपने लेख में प्रतिपादित किया है। डॉ. श्रेयांस कुमार जैन ने कर्म पर चिन्तन प्रस्तुत किया है।

धर्ममंगल : २ सितम्बर, २०१० (वर्ष २५, अंक ७), संपादिका, सौ. लीलावती जैन, १ सलील अपार्टमेंट, ५७, सानेवाड़ी, औंध, पुणे-४११००७

धर्ममंगल के रजत जयंती वर्ष में **धर्म मंथन (चौथी किस्त)** के रूप में इसका प्रकाशन हुआ है। इस अंक में अक्टूबर १९९४ से जनवरी २००६ तक प्रकाशित लीलावती जी के लेखों का संकलन किया गया है जो तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर उपयोगी प्रकाश डालते हैं।

गीत गंगा : ले. श्री राजमल पवैया; प्र. तारादेवी पवैया ग्रन्थमाला, २४, इब्राहीमपुरा, भोपाल- ४६२००१; २०१०; पृष्ठ ३२

इसमें श्री राजमल पवैया जी की ७८ भक्तिपूर्ण काव्य रचनायें प्रकाशित हैं।

भोजन और स्वास्थ्य : ले. डॉ. चंचलमल चोरड़िया; प्र. कल्याणमल चंचलमल चोरड़िया ट्रस्ट, चोरड़िया भवन, गोल बिल्डिंग रोड, जोधपुर- ३४२००३; २०१०; पृ. ६४

इस पुस्तक में स्वास्थ्य के लिये भोजन की आवश्यकता का निदर्शन करते हुये यह विवेचन किया गया है कि मानवीय गुणों के पोषण के लिए जो खाद्य उचित हो उसी का अपने आहार के लिए चयन किया जाना चाहिए। अन्य व्यावहारिक चर्चा के अतिरिक्त इसमें मांसाहार के निषेध और शाकाहार के औचित्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। लेखक यद्यपि एक इंजीनियर हैं, वह एक नैष्ठिक श्रावक हैं और उनकी विचारणा पारम्परिक जैन दृष्टिकोण से प्रभावित है। यह पुस्तक भोजन कैसा हो, इस सम्बन्ध में उपयोगी जानकारी प्रदान करती है।

श्वेतपिच्छाचार्य विद्यानन्द जी की कृतियां :

१. सूतक-पातक न मानने वाला मिथ्या दृष्टि : विभिन्न ग्रन्थों और शब्दकोशों से सूतक-पातक विषयक सूत्र और सूचनाएं इस १६ पृष्ठीय पुस्तिका में संकलित की गई हैं।

२. वन का पति वनस्पति : इस पुस्तक में वनस्पति के सम्बन्ध में अनेक उद्धरणों और आगमोक्त प्रमाणों के आधार पर जैन धर्म की दृष्टि से पर्यावरण का

विवेचन किया गया है। पर्यावरण का विशिष्ट आधार वनस्पति जगत है। सभी २४ तीर्थंकरों को किसी-न-किसी वृक्ष के नीचे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इस दृष्टि से भी जैन धर्म के अनुसार वृक्षों का विशेष महत्व है। लेखक स्वयं भी १२ वर्षों से श्वेत शीषम वृक्ष के नीचे निरन्तर ज्ञान ध्यान करते हैं।

ये दोनों पुस्तकें श्री कुन्द-कुन्द भारती, १८, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-११००६७ से क्रमशः १५ अगस्त, २०१० और २१ अक्टूबर, २०१० को प्रकाशित हुई हैं।

सम्पर्क २०१० : संकलन डॉ. अनुपम जैन; प्र. तीर्थंकर ऋषभ जैन विद्वत महासंघ, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर-२५०४०४

इस संस्करण में ३०-६-२०१० तक यथा-संशोधित सूचनाएं संकलित हैं। सूचना पांच खण्डों में संकलित है - जैन विद्या के अध्येताओं की स्थानवार सूची भारत में २१४ स्थानों पर ७५० अध्येता तथा विदेशों में १३६ अध्येता; जैन पत्र-पत्रिकाओं की स्थानवार सूची (४६७ भारतीय और तीन विदेशी पत्र-पत्रिका); प्रमुख जैन शोध संस्थानों की सूची; प्रमुख जैन प्रकाशकों एवं पुस्तक विक्रेताओं की सूची; तथा दिगम्बर जैन तीर्थ-क्षेत्रों के सम्पर्कों की सूची। यह एक उपयोगी डायरेक्ट्री है। इसके प्रकाशन के लिए संकलनकर्ता और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

महालक्ष्मी क्षमावाणी : सं. श्री शरद कुमार जैन; प्र. महालक्ष्मी, १८४, पटपड़गंज इण्डस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-११००९२

इस वर्ष क्षमावाणी के अवसर पर २४-९-२०१० को **महालक्ष्मी** का यह विशिष्ट अंक प्रकाशित किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसका लेखन तथा सम्पादन केवल जैन साधुओं द्वारा ही किया गया है। दिगम्बर जैन साधु और साध्वियों के अतिरिक्त श्वेताम्बर स्थानकवासी आचार्य श्री शिवमुनि जी एवं श्री शिरीष मुनि जी, श्वेताम्बर उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागर जी तथा तेरापंथी आचार्य महाश्रमण के विचार भी इसमें सम्मिलित किये गये हैं।

Gems of Jaina wisdom : Trans. Mr Dashrath Jain, Prof. P. C. Jain; Pub. Jain Granthagar, Delhi; pp 240; 2010; price Rs. 500/-

Acharya Ashok Sahajanand and his son Mr. Megh Raj Jain are publishing under the banner of Jain Granthagar, important

works on Jainism in English. The instant work is volume 7 of the Gems of Jaina Wisdom series. It contains the original text, and Hindi and English translation of three important works : **Ratnakaranda Sravakachara** of Acharya Samantabhadra, **Dravya-Sangrah** of Acharya Sri Nemichandra Siddhantadeva, and **Chhah Dhala** by Pt. Daulat Ram. In the preface the learned authors Mr. Dasharath Jain and Prof. P. C. Jain, have given a brief introduction of the three works compiled in this edition, which is very informative for any causal reader. It is a useful compilation for producing which the authors and the publishers deserve congratulation.

Family Background as a Function of College-going Student Leaders : by Dr. Avdhesh Kumar Agrawal ; pub. Nirmal Publications, A- 139, Gali No. 3, Kabir Nagar, Delhi-110094; 2010 ; pp 127 ; price 200/-

The author has made a useful study with regard to the role of parents in the development of leadership behaviour in adolescence. It is presented in 5 chapters : conceptual frame-work, methodology and design, family background as correlates of leaders and non-leaders, resuts and discussion, and conclusion and suggestion. The study is based on a survey on the basis of questionnaires. It has been concluded that adolescent leadership behaviour at school has characteristic relationship with family climate consisting of economic status, father's personality and fathering. It has been suggested that further study may be expanded by including other relevant variables, e.g., culture stratum (urban and rural), caste and sex etc.

The study is useful for understanding the behaviour of adolescents in terms of leadership. It also contains a detailed bibliography and questionnaires for eliciting relevant information. The author, Dr. Agrawal, is Associate Professor & Head of Department of Psychology in Nehru P. G. College at Lalitpur.

- डॉ. शशि कान्त

अभिनन्दन

श्री आनन्द कुमार जैन को "चामुण्डराय कृत चारित्रसार - एक समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन" पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

श्रीमती दीपा जैन को "गुणस्थान का अध्ययन" विषय पर गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद द्वारा पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

श्री दिलीप डोणगांवकर, सेवानिवृत्त प्राचार्य, अकोला, को संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय ने Study of Organizational Climate in Junior Colleges of Amravati Division & its effect on Job Satisfaction of Teachers पर पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की।

श्रीमती वीरू जैन को बरकत उल्ला विश्वविद्यालय भोपाल द्वारा भारत और कनाडा के आर्थिक सम्बन्धों पर शोध के लिए पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

डॉ. उदय चन्द जैन, सेवानिवृत्त एसोसियेट प्रोफेसर, जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर को प्राकृत साहित्य के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि के लिए १५ अगस्त को राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल द्वारा राष्ट्रपति पुरस्कार की घोषणा की गई।

एमेरिटस प्रोफेसर डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' को इण्डियन सोसायटी फॉर बुद्धिस्ट स्टडीज़ द्वारा गुजरात विद्यापीठ में आयोजित अधिवेशन में उनके बौद्ध धर्म, साहित्य और संस्कृति विषयक समग्र योगदान के लिए मंजूश्री सम्मान से सम्मानित किया गया।

श्री ओमप्रकाश जैन, हरियाणा विधान सभा के पानीपत ग्रामीण क्षेत्र से विधान सभा चुनाव में भारी बहुमत से विजयी हुये। उन्हें हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा द्वारा कैबिनेट स्तर का मंत्री बनया गया।

२२ अगस्त को जैन मिलन लखनऊ की ओर से प्रेस क्लब में आयोजित कवि फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' की ९७वीं जयन्ती पर डॉ. महावीर प्रसाद जैन "प्रशान्त" को उनकी सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सेवाओं के लिए "कवि फूलचन्द जैन पुष्पेन्दु सम्मान, २०१०" प्रदान किया गया।

१३ सितम्बर को जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्रीमती विमला जैन को मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर पदोन्नत किया गया।

१४ सितम्बर को चण्डीगढ़ में हरियाणा सरकार द्वारा हरियाणा साहित्य एकेडमी पुरस्कार श्री ताराचंद प्रेमी, महामंत्री, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा, को प्रदान किया गया। प्रेमी जी ने पुरस्कार राशि एक लाख रु. में ५१,०००/- रुपये अपनी ओर से मिलाकर रुपये १,५१,०००/- का चेक मुख्यमंत्री पीड़ित राहत कोष को प्रदान कर दिया।

१४ अक्टूबर को श्रवणबेलगोला में प्राकृत भाषा एवं जैन विद्या के वरिष्ठ विद्वान प्रोफेसर डॉ. राजाराम जैन को प्राकृत ज्ञान भारती इण्टरनेशनल एवार्ड, २००७, से सम्मानित किया गया।

२२ अक्टूबर को पं. निहालचंद जैन, पूर्व प्राचार्य, सं. घर-घर चर्चा रहे धर्म की, को हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप पुरस्कार २०१० से सम्मानित किया गया।

२४ अक्टूबर को अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा अणुव्रत भवन दिल्ली में डॉ. रतनचन्द्र जैन भोपाल को साहित्य सेवा के लिए, श्री दुलीचंद जैन चेन्नई को शाकाहार एवं जीवदया के प्रचार के लिए, श्री एस. एस. जैन दिल्ली को रोगी सेवा के लिए, पं. जयसेन जैन इन्दौर को पत्रकारिता के लिए, श्री सुरेशचन्द जैन बारौलिया आगरा को जैन धर्म प्रचार-प्रसार के लिए और मास्टर श्रेयांश जैन नई दिल्ली को मेधावी छात्र होने के लिए, अहिंसा इण्टरनेशनल पुरस्कार २०१० प्रदान किये गये।

शाकाहार व अहिंसा के प्रचार-प्रसार हेतु डॉ० कल्याणमल गंगवाल को कुण्डलपुर (दमोह) में सम्मानित किया गया।

३१ अक्टूबर को विश्वमैत्री दिवस पर जैन मिलन लखनऊ एवं जैन विद्या शोध संस्थान लखनऊ द्वारा डॉ. श्रीमती नीलम जैन को विश्व मैत्री सेवा सम्मान २०१० प्रदान किया गया।

उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यशवृद्धि के लिए **शोधादर्श** परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है।

आभार

श्री सुरेन्द्र पाल जैन, गाजियाबाद, ने **शोधादर्श** को शुल्क स्वरूप रु २५१/- भेंट किये।

श्रीमती हेमबाला जैन एवं श्री शरद कुमार जैन, महालक्ष्मी, १८४, पटपड़गंज, दिल्ली ने रु. २००/- भेंट किये।

डॉ. शशि कान्त ने अपने पितामह बा. पारसदास जैन की ५४वीं पुण्यतिथि (४-६-२०१०) पर उनकी पुनीत स्मृति में रु. १०१/- भेंट किये।

शोधादर्श ७० में वर्ष २०१० के अभिदाताओं की जो सूची दी गई है उसमें निम्नलिखित सुधी पाठकों का नाम और सम्मिलित कर लिया जाये-

२९. श्री अमरनाथ, लखनऊ
३०. श्री अनिल कुमार सिंह, फीरोजाबाद
३१. डॉ. (श्रीमती) उषा जैन, बिजनौर
३२. श्रीमती गीता जैन, लखनऊ
३३. श्री धन प्रकाश जैन, मेरठ
३४. श्री पद्म चन्द जैन, कोलकाता
३५. डॉ. भुवनेन्द्र कुमार जैन, मिक्कोसिल, मिसीसौगा, कनाडा
(इन्होंने विदेशों के लिए निर्धारित २५ डालर = रु. १,१२५/- प्रदान किये)।
३६. श्री संजय किशोर जैन, मुरादाबाद

-सम्पादक

शोक संवेदन

दिनांक ७ अगस्त २०१० को हमारी समिति के कोषाध्यक्ष श्री विजयलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती कुसुम जैन का ६५ वर्ष की वय में निधन हो गया। वह पिछले कुछ समय से कैंसर के असाध्य रोग से पीड़ित थीं। वह एक धर्मनिष्ठ सुश्राविका थीं। अपने पीछे वह भरा-पूरा परिवार छोड़ गई हैं।

८१ वर्षीय श्री राजेन्द्र किशोर जैन का १३ अक्टूबर को अलीगढ़ में निधन हो गया। वह उत्तर प्रदेश उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष थे।

जैन विद्या के आचार्य प्रभाचन्द्र विशेषांक के माध्यम से यह विदित हुआ कि वयोवृद्ध विद्वान पं. कुन्दनलाल जैन, पूर्व प्राचार्य, अब हमारे बीच नहीं रहे। **शोधादर्श** के वह प्रशंसक थे और उनके लेख आदि भी समय-समय पर इसमें प्रकाशित हुये हैं। दूसरे विद्वान डॉ. गुलाब चन्द जैन, भूतपूर्व प्राचार्य, श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत कॉलेज, जयपुर भी अब हमारे बीच नहीं रहे।

एक अन्य विद्वान जस्टिस एम. एल. जैन, दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, भी हमारे बीच नहीं रहे। वह **शोधादर्श** से पाठक और लेखक के रूप में शुरु से ही जुड़े थे।

छपते-छपते यह दुःखद समाचार प्राप्त हुआ कि हमारी समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन के छोटे भाई, ६१ वर्षीय श्री प्रेमचन्द नाहर का दिनांक १६ दिसम्बर को अपने निवास स्थान पर कुचेरा ग्राम में हृदयगति रुक जाने से आकस्मिक निधन हो गया। वह एक धर्मनिष्ठ श्रावक थे। दिनांक २८ दिसम्बर को श्री सुरेन्द्र कुमार जैन का हृदयगति रुक जाने से अल्पायु में आकस्मिक निधन हो गया। वह लखनऊ की जैन समाज और चारबाग क्षेत्र में अपने धार्मिक स्वभाव के कारण लोकप्रिय थे। वह हमारे पुस्तकालय के सदस्य भी थे। २६ दिसम्बर को हमारी समिति के उपमंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जैन के जामाता के छोटे भाई ४१ वर्षीय श्री सुशील कुमार जैन का दिल्ली में आकस्मिक निधन हो गया।

उपर्युक्त सभी के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, दिवंगत आत्माओं की चिरशांति और सद्गति के लिए प्रार्थना करता है और शोक संतप्त परिवारजनों एवं मित्रवर्ग के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

समाचार विविधा

मथुरा में जैन संग्रहालय

मथुरा कलेक्ट्रेट के पास स्थित पुरातत्व संग्रहालय को १४ मई २००३ को **जैन संग्रहालय** का नाम दिया गया था। १८८८ से १८६२ तक जो उत्खनन हुआ, उससे महत्वपूर्ण जैन कलाकृतियां प्राप्त हुईं थीं और उन्हें मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया था। मथुरा संग्रहालय अपने नवीन भवन में स्थानान्तरित कर दिया गया परन्तु जैन पुरावशेष यहीं संग्रहीत रहे। **दैनिक जागरण** दिनांक २६-२७ सितम्बर में प्रकाशित समाचार से यह विदित हुआ कि बिना सरकार की अनुमति के संस्कृति विभाग के स्थानीय अधिकारियों ने राजकीय जैन संग्रहालय का विलय राजकीय संग्रहालय में कर दिया। इससे जैन समाज में रोष व्याप्त हुआ और इस निर्णय के खिलाफ शासन को विरोध पत्र भेजे गये। यह संतोष की बात है कि शासन द्वारा इस एक मात्र राजकीय जैन संग्रहालय को पुनः व्यवस्थित कर दिया गया।

जैन मिलन लखनऊ

२२ अगस्त को जैन मिलन लखनऊ द्वारा प्रेस क्लब में कवि फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' की ६७वीं जयन्ती पर कवि डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' को उनकी सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सेवाओं के लिये **कवि फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' सम्मान २०१०** से सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि श्री गंगा रत्न पाण्डेय ने दीप प्रज्ज्वलन व पुष्पेन्दु जी के चित्र पर माल्यार्पण किया। मुख्य वक्ता प्रो. नेत्रपाल सिंह ने कहा कि कवि पुष्पेन्दु सौम्य स्वभाव के निश्छल व्यकित थे। वे जीवन पर्यन्त अनेक संघर्षों का सामना करते हुए साहित्य साधना करते रहे। उन्होंने लगभग ४०० से अधिक कविताएं लिखी। उनकी कविताओं का संकलन **बसंत बहार** शीर्षक से जैन मिलन लखनऊ द्वारा १६६६ में प्रकाशित किया गया था। इसकी भूमिका डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' द्वारा लिखी गयी थी।

३१ अक्टूबर को जैन मिलन लखनऊ एवं उ०प्र० जैन विद्या शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में विश्व मैत्री दिवस एवं विश्व मैत्री सेवा सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि प्रो० सरोज चूड़ामणि गोपाल (कुलपति, शाहूजी महाराज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ) थीं। अध्यक्षता वीर नरेश चन्द्र जैन (देहरादून), राष्ट्रीय महामंत्री, भारतीय जैन मिलन, ने की।

जैन मिलन लखनऊ के अध्यक्ष वीर नलिन कान्त जैन ने स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। भारतीय जैन मिलन के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष वीर शैलेन्द्र जैन ने विगत ७ वर्षों से आयोजित होने वाले विश्वमैत्री सेवा सम्मान के विषय में विस्तार से प्रकाश डाला।

मुख्य अतिथि प्रो० सरोज चूड़ामणि गोपाल तथा वीर पुष्पराज जैन 'पम्मी' एवं वीरांगना आरती जैन (कन्नौज) के कर-कमलों द्वारा स्व० सवाई लाल जैन कन्नौज निवासी की पुण्य स्मृति में प्रदान किया जाने वाला विश्व मैत्री सेवा सम्मान वर्ष २०१० **डॉ. नीलम जैन** (गुडगांव) को प्रदान किया गया। सम्मान में शाल, स्मृति-चिन्ह, कलश एवं २१,०००/- की धनराशि प्रदान की गई। इस अवसर पर मुख्य वक्ता डॉ० नीलम जैन ने कहा कि 'क्षमा से ही विश्व शांति सम्भव है। यदि हम अपने द्वारा की गयी गलतियों की क्षमा मांग लें तथा जिस व्यक्ति से हमने क्षमा मांगी है और वह हमें क्षमा कर दे उसी से विश्व में शान्ति सम्भव है। अहम् की भावना ही दूरियों को बनाती है। जब तक निराकुलता नहीं उत्पन्न होगी तब तक विश्व शांति के साथ आत्मिक-सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।'

उ०प्र० जैन विद्या शोध संस्थान के निदेशक डॉ० योगेन्द्र सिंह ने संस्थान की गतिविधियों से अवगत कराया।

प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

१३ अगस्त, २०१० को **डॉ० हीरालाल जैन स्मृति व्याख्यानमाला** का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता संस्थान के निदेशक डॉ० ऋषभचन्द्र जैन ने की। व्याख्यानमाला को सम्बोधित करते हुये डॉ० भगीरथ मिश्र, अध्यक्ष, दर्शन संकाय, कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा ने कहा कि भारतीय दर्शनों में ज्ञान के विषय में विद्वानों ने गंभीर चिन्तन किया है, जो अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। डॉ० फूलचन्द्र जैन प्रेमी, आचार्य, जैनदर्शन, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने कहा कि जैनदर्शन में ज्ञान के स्वरूप, उसकी स्व-पर प्रकाशकता आदि पर प्रभूत चिन्तन हुआ है, जो विश्व ज्ञान विषयक विचारकों के लिए नये विचार बिन्दु प्रस्तुत करता है। डॉ० श्यामनारायण चौधरी, कोषाध्यक्ष, इण्डियन फिलॉसफीकल कांग्रेस, हाजीपुर ने भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के ज्ञान सम्बन्धी मतों का उल्लेख किया। डॉ० देवनारायण शर्मा, पूर्व निदेशक, ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में कथित ज्ञान की अवधारणा का महत्व प्रतिपादित किया।

अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ० ऋषभचन्द्र जैन, निदेशक, ने कहा कि आज विद्वानों ने ज्ञान के भारतीय चिन्तन का स्वरूप स्पष्ट कर हम सभी का बड़ा उपकार किया है। विश्व समुदाय ज्ञान सम्बन्धी मनीषा के लिए भारतीय दार्शनिकों का ऋणी है।

२० नवम्बर को **डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी व्याख्यानमाला** का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता डॉ० रवीन्द्र कुमार सिंह, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, ने की। अध्यक्ष द्वारा वर्ष २००८ में प्राकृत और जैनशास्त्र विषय में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले संस्थान के छात्र श्री रत्नाकर शुक्ल को श्रीमती तुलसादेवी गोरेलाल जैन चेरिटेबल ट्रस्ट, नागपुर, की ओर से प्रवर्तित प्रो० भागचन्द्र पुष्पलता जैन स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

व्याख्यानमाला को सम्बोधित करते हुये डॉ० श्रीयांश कुमार सिंघई, आचार्य एवं अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान मानित विश्वविद्यालय, जयपुर ने **पवयणपाहुड में श्रमण** विषय पर व्याख्यान दिया, और **प्रवचनसार** जैसे गूढ़ ग्रन्थ के सन्दर्भ में श्रमण के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट किया।

अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ० रवीन्द्र कुमार सिंह ने मानव जीवन का निहितार्थ बताया।

तत्त्वार्थसूत्र युवा विद्वत् संगोष्ठी

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति स्नातक परिषद द्वारा आयोजित तत्त्वार्थसूत्र युवा विद्वत् संगोष्ठी दिनांक ३० व ३१ अक्टूबर को टोंक (राज०) में सम्पन्न हुई। २० युवा विद्वानों के द्वारा शोधालेखों का प्रस्तुतिकरण हुआ। श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर के प्राचार्य डॉ० शीतलचन्द जैन और संस्थान के अधिष्ठाता पं० रतनलाल बैनाड़ा ने अध्यक्षता और सारस्वत आतिथ्य किया। संगोष्ठी के संयोजक पं. विकास सिंघई और पं. पुलक गोयल थे।

श्रवणबेलगोला में वर्ल्ड जैन कांफ्रेंस और विश्व जैन महासम्मेलन

कर्नाटक के आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया मैसूर द्वारा 'जैनिज़म थ्रू दी एजेज़' की वर्ल्ड जैन कान्फ्रेंस ८ से १० अक्टूबर तक आयोजित थी।

इस कान्फ्रेंस में विदेश के बीस तथा भारत के बीस वरिष्ठ विद्वानों को आमन्त्रित किया गया था। अधिकांश विद्वानों ने कर्नाटक की प्राचीन संस्कृति, उसके शिलालेखों तथा प्राचीन इतिहास पर प्रभावकारी विस्तृत प्रकाश डाला। प्रो. डॉ. राजाराम जैन ने 'ज्ञान-विज्ञान का विश्वकोष - प्राकृत जैन साहित्य' विषय पर अपने निबन्ध का वाचन किया।

सभी उपस्थित विद्वानों को कनकगिरि-पर्वत की तीर्थयात्रा कराई गई। वहाँ के मठाधीश भट्टारक श्री भुवनकीर्ति स्वामी जी ने अपने प्रवचन में अपने विद्यार्थी जीवन में डॉ. राजाराम जैन से तत्त्वचर्चा सम्बंधी मधुर संस्मरण सुनाये।

१२ से १४ अक्टूबर तक श्रवणबेलगोला में विश्व जैन महासम्मेलन का आयोजन था। बाहुबलि प्राकृत जैन विद्यापीठ के निदेशक प्रो. प्रेमसुमन जैन द्वारा इस आयोजन

की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। १२ तथा १३ अक्टूबर को देश-विदेश के सभी विद्वानों-विदुषियों के शोध निबन्धों का वाचन तथा तत्व चर्चा हुई तथा बीच-बीच में महाराज श्री चारुकीर्ति जी की रोचक एवं सूचक टिप्पणियों ने सभी श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध किया था।

१४ अक्टूबर का दिन एक महान ऐतिहासिक सारस्वत दिवस के रूप में आयोजित किया गया। श्रवणबेलगोला के भट्टारक जी के मन में यह भावना थी कि जो विद्वान् एकनिष्ठ होकर स्वाभिमानपूर्वक जटिल और दुरूह शोधकार्यों में संलग्न हैं उन्हें उनके शोधकार्यों की मौलिकता, अपूर्वता, नवीनता तथा उनके निर्विवाद व्यक्तित्व के अनुकूल सार्वजनिक सम्मान-पुरस्कार देकर उन्हें ऊर्जस्वित एवं प्रोत्साहित अवश्य किया जाना चाहिये। इसी भावना से प्रेरित होकर भट्टारक स्वामी जी ने कर्नाटक के चीफ जस्टिस महामहिम ए० कव्विन महोदय की अध्यक्षता में विषय विशेषज्ञों की एक निर्णायक समिति का गठन किया जिसमें प्राकृत एवं जैन विद्या के क्षेत्र में कार्यरत देश-विदेश के वरिष्ठ विद्वानों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का निष्पक्ष मूल्यांकन किया गया और सर्वसम्मत निर्णय स्वरूप भारत से प्रो. डॉ. राजाराम जैन (नोएडा, उत्तर प्रदेश), पेरिस (फ्रांस) की विदुषी महिला प्रो. डॉ. नलिनी बलवीर तथा जर्मनी की विदुषी महिला प्रो. डॉ. एडैलहैट मैट्टी को क्रमशः सन् २००७, २००८ तथा २००९ **प्राकृत ज्ञान भारती इंटरनेशनल अवार्ड** के अन्तर्गत एक लाख इक्यावन हजार रुपयों के साथ-साथ प्रतीकचिन्ह, प्रशस्ति पत्र, शाल, श्रीफल आदि के द्वारा विशाल समारोह में कर्नाटक प्रदेश की परम्परागत कलात्मक पद्धति से पुरस्कृत-सम्मानित किया गया। तीनों पुरस्कृत विद्वान-विदुषियों को महास्वामी भट्टारक जी के वरदायी आशीर्वादों के साथ विभिन्न प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा बहुमूल्य कण्ठहार पहनाये गये। रंग-बिरंगी पुष्पमालाओं से सुसज्जित खुली जीप में कर्नाटक के चीफ जस्टिस महामहिम ए० कव्विन महोदय के साथ नगर भ्रमण कराने के बाद पुरस्कृतों को सजे-धजे मंच पर ले जाया गया।

सस्वर मंगल-पाठ-आरती के साथ पुरस्कृत विद्वानों का कर्नाटकीय पद्धति से स्वागत किया गया। महास्वामी जी के बगल में स्वर्णमय सिंहासन रखा हुआ था। सर्वप्रथम प्रो. राजाराम जैन के नाम की घोषणा की गई। स्वर्ण रजत दण्डधारी दो स्नातकों के मार्ग निर्देशन में उन्हें सिंहासन पर बैठाया गया। अंग्रेजी, हिन्दी एवं कन्नड़ में उनका पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया। डायरेक्टर प्रो. प्रेमसुमन ने माल्यार्पण, सम्मेलन के अध्यक्ष प्रो. डॉ. हम्पा नागराजैय्या ने शाल, चीफ जस्टिस महोदय ने अमूल्य प्रशस्तिचिन्ह, ट्रस्टी महोदय ने द्रव्यराशि-सम्मान तथा महास्वामी जी ने मांगलिक फल-करण्डिका प्रदान कर वरदायी आशीर्वादों की वर्षा करते हुए अपना हार्दिक प्रमोद व्यक्त किया। दोनों पुरस्कृत विदुषियों का भी इसी प्रकार भव्य सम्मान किया गया।

(विवरण प्रो. डॉ. राजाराम जैन के सौजन्य से प्राप्त हुआ।)

पाठकों के पत्र

शोधादर्श ७० प्राप्त हुआ। डॉ० शशि कान्त जी का समाज चिन्तन आलेख ज्ञानवर्धक है। लगभग पूरा अंक जैन समाज की विविध जानकारियों से भरा है। पूरा अंक गागर में सागर है। बधाई स्वीकार करें, कुशल सम्पादन के लिए।

- श्री अमरनाथ, लखनऊ

जैन संस्कृति एवं दर्शन की शोधपूर्ण सम्मानित पत्रिका "**शोधादर्श**" का प्रत्येक अंक अवलोकनीय, पठनीय एवं संग्रहणीय होता है। जैन-दर्शन से सम्बन्धित अनुसन्धानात्मक वाङ्मय शोधार्थियों के लिये महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। '**शोधादर्श**' के व्यंग्यकार, समीक्षक, सम्पादक स्व. रमा कान्त जैन का स्मृति अंक (**शोधादर्श** ६८) उनके व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डालता है। इस अंक की समस्त रचनायें स्व. जैन जी के विषय में विशिष्टताओं का विस्तृत ज्ञान उपलब्ध कराती हैं। विशेष रूप से उनकी जीवन संगिनी आदरणीया श्रीमती आशा जैन की "मेरी आँखों की रोशनी : देवता तुल्य पति" अश्रुपूरित भावांजलि हृदयस्पर्शी है। यद्यपि स्व. रमा कान्त जैन सर्वमान्य साहित्यकार थे तथापि वे जैन-धर्म एवं दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे सरल, शान्त स्वभाव, मुख पर स्मित, मृदुभाषी एवं सकारात्मक-वृत्ति के मानव थे -

व्यंग्यकार, सम्पादक, रमाकान्त जी जैन।
सदैव जीवन में रहे, वे नितांत "यस मैन"।।

स्मृति अंक की प्रस्तुति में सम्पादक मण्डल का सार्थक श्रम स्तुति योग्य है।

"**शोधादर्श**" का अंक ६९ में आरम्भ- इन्द्र धनुषी रंग से आवृत्त नयनाभिराम आवरण पृष्ठ चित्ताकर्षक है। निश्चय रूप से यह पग प्रशंसनीय है।

- श्री अजित कुमार वर्मा, लखनऊ

शोधादर्श अंक ७० प्राप्त हुआ। बहुत ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी है। धन्यवाद!

- श्री इन्द्रकुमार साटीया, हुबली

शोधादर्श ७० की प्रति मिली, एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। इस अंक के कई लेख गंभीर चिन्तन और अनुसरण के लिए प्रवृत्त करते हैं यथा - जैन परम्परा में व्रतों का महत्त्व, श्रुत पंचमी, श्रुत और उसका संरक्षण, धर्म का मर्म एवं सुख का सन्देश, द्वन्द (द्वन्द्व) शमन के उपाय, जैनत्व की कसौटी, आदि। 'श्रावक की जिज्ञासा' विचारणीय है, उसका अपेक्षित उत्तर मिलना चाहिए। 'कन्या भ्रूण हत्या कैसे रोकें' सामाजिक ज्वलंत समस्या पर प्रकाश डालता है। कई कविताओं ने प्रभावित किया है

जैसे 'मील का पाषाण' - 'अग्नि से विनाशे वह दुष्ट, शैतान है, अनल से तम हटाये वह इन्सान है। दुख का विवेचन सरल भी है और मार्मिक भी - तृष्णा, लोभ और मोह के मिट जाने से दुख नष्ट होते हैं। इसी प्रकार मन की शान्ति पाने के लिए 'अनन्त खोज' जारी है। प्रकाश-पुत्रों का उद्बोधन भी प्रशंसनीय है - 'जन्म पर फुफकारती है मौत, निगल पायी नहीं सूरज, लडखड़ाती लौ लिये दीपक रहा है जल, स्नेह की स्रोतस्विनी को पी नहीं तूफान पाया।' तमिल संघोत्तर काल में जैन काव्य के सन्दर्भ में व्यक्त जिज्ञासा का समुचित समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'साहित्य चर्चा' के अन्तर्गत **'दर्द का रिश्ता'** की जो समीक्षा छपी है उससे लेखिका की संवेदनशीलता उजागर होती है और पाठक को कहानियाँ पढ़ने को लालायित करती है। 'साहित्य सत्कार' तथा 'समाचार विविधा' स्तंभों के अन्तर्गत अनेक नए प्रकाशनों की जानकारी तथा उनमें सन्निहित विचारों की अभिव्यक्ति से ज्ञानार्जन होता है। जैन मंदिर तथा महावीर की प्रतिमा के रंगीन छायाचित्रों से आवरण अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है। सारगर्भित रचनाओं से संभरित इस अंक के लिए हार्दिक बधाई।

- डॉ ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई

आपके द्वारा सुसम्पादित **शोधादर्श-७०** अंक अवलोकित कर अत्यन्त आनन्दानुभूति हुई। इस स्तरीय और अत्युपादेय अंक में स्व० श्री रमा कान्त जैन का गुरुगुण कीर्तनः कविवर श्री दौलतराम, डॉ० शशि कान्त का सुविचारित 'समाज चिन्तन', डॉ० ज्योति प्रसाद जैन का 'जैन परम्परा में व्रतों का महत्त्व' आदि अनेक लेख सारगर्भित और प्रेरणाप्रद होने के कारण पठनीय हैं। अनेक सरस पद्य रचनाओं के समावेश से इस अंक में पर्याप्त रोचकता विद्यमान है।

समासतः आपका सम्पादकीय कौशल सर्वत्र संलक्षित है, जिससे इस अंक की उत्तम प्रस्तुति के लिए आपका सारस्वत सत्प्रयास सर्वथा श्लाघनीय है। हमारी हार्दिक बधाई आलोक पर्व पर इस सफलता के लिए स्वीकारें।

- डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, अजीतमल (औरैया)

शोधादर्श ७० की कलात्मक प्रस्तुति और उसमें सम्पादित विविध पठनीय सामग्री को देखकर मन प्रसन्न हुआ। चि. नलिन कान्त जैन और उनके सहयोगियों को मेरी हार्दिक शुभकामना।

- श्री कैलाशनारायण टन्डन, कानपुर

आपका **शोधादर्श** पत्र अच्छा प्रकाशित हो रहा है।

- श्री ताराचन्द्र जैन बख्शी, जयपुर

आपके संपादकत्व में **'शोधादर्श'** में नया निखार आया है, यद्यपि आप अपने पूर्वजों की परम्परा का ही निष्ठापूर्वक परिपालन कर रहे हैं, इसके लिए साधुवाद प्रेषित कर रहा हूँ। जैसा कि पाठकों के पत्रों से विदित होता है, **'शोधादर्श'** जैन पत्र-पत्रिकाओं के बीच विशेष महत्व रखता है और आप इसे और भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करेंगे, इस बात का पूर्ण विश्वास है। आपके पूरे परिवार का **शोधादर्श** के प्रति समर्पित भाव तथा जैन समाज को सतत सजग रखने का प्रयास प्रशंसनीय है।

- श्री दर्शन लाड़, मुम्बई

श्रद्धेय (स्व०) डॉ. ज्योति प्रसाद जी का ज्ञान का यह कल्पवृक्ष हरा-भरा फल-फूल रहा है और तीसरी पीढ़ी **शोधादर्श** को बड़े जतन से, पूरी साहित्यिक गवेषणा के साथ प्रकाशित कर पाठकों की पठनीयता और अभिरुचि को ध्यान में रखकर सातत्य बनाये हुये हैं।

- प्राचार्य पं. निहाल चंद जैन, जवाहर वार्ड, बीना

शोधादर्श - ६९ अपने रंग बिरंगे मुख पृष्ठ के साथ अच्छा लगा। अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी का भवन चित्र बड़ा आकर्षक है। चित्र परिचय भी देना चाहिये था।

मंगल श्लोक को पढ़कर लगा कि परस्पर धर्मों में नकल करने की होड़ रही है। ब्राह्मण धर्म में मंगल श्लोक निम्नलिखित ढंग से कहा गया है -

मंगलं भगवान विष्णुः मंगलं गरुडध्वजः,
मंगलं पुण्डरीकाद्वं मंगलायतनो हरिः।।

इसी प्रकार **पद्म पुराण, हरिवंश पुराण** आदि ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म में समानार्थी हैं। नारी की स्थिति पर डॉ० श्रीमती मीनाक्षी जैन डागा का लेख अच्छा है। नारी के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण चाहे जिस समाज में रहा हो वह केवल साधना पथ के लिये रहा है। शंकराचार्य, बुद्ध, कबीर सभी ने नारी से दूर रहने का निर्देश दिया है, परन्तु गृहस्थ में नारी अर्धांगिनी है।

भ्रूण कन्या के प्रति सहानुभूति से भरा नलिन कान्त जैन का लेख सामयिक और औचित्यपूर्ण है। श्री रमा कान्त जैन के सम्बन्ध में श्री रवि मोहन त्रिवेदी का लेख भाव पूर्ण और तथ्य पूर्ण है। उनके सम्बन्ध में पाठकों के पत्र आ रहे हैं और आते रहेंगे। पत्रिका प्रेषण हेतु बहुत-बहुत धन्यवाद। नये सम्पादक को बधाई।

शोधादर्श - ७०

सुन्दर है मुखपृष्ठ, बहुत आकर्षक मन्दिर।
लोचन 'परमानन्द', वहीं हो जाते सुस्थिर।।
महावीर भगवान, लगाये हैं पद्मासन।

कहते जीवन व्यर्थ, न हो जिसमें अनुशासन।।
समाचार साहित्य, लेख, सब पढ़ने लायक।
सत्य, अहिंसा, त्याग, तपस्या शान्ति प्रदायक।।
'नलिन कान्त!' आशीष, बनो तुम यश के भाजन।
पढ़कर **'शोधादर्श'** करें पाठक अभिवादन।।

- डॉ० परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श ७० प्राप्त, धन्यवाद। पृष्ठ ६ पर 'जैन धर्म है, जाति नहीं', एक दम उचित है। निश्चित ही जैन धर्म आचरण शैली है। इसका जन्मना से कोई सम्बन्ध नहीं, कर्मणा से महत्व है। जैन धर्म एक आन्दोलन है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, सदाचार आधारित निर्मल जल की जीवन सरिता जो पान करे उसी का कल्याण है।

- श्री प्रेम कुमार जैन, विदिशा

पत्रिका में प्रिय नलिन कान्त की समय-श्रम-गवेषणामूलक सम्पादकीय मेधा झलकती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि दिवंगत सम्पादकों की कमी नहीं खलेगी और आपके निर्देशन में नई पीढ़ी पत्रिका की गरिमा को बनाये रखेगी। नई टीम को मेरी हार्दिक शुभकामनायें व आशीर्वाद।

ईश्वर से प्रार्थना है कि ज्योति निकुंज में ज्ञान की ज्योति सदैव प्रज्जूवलित रहे और वह विद्वत्ता का निकुंज बना रहे।

- श्री बी. डी. अग्रवाल, लखनऊ

अंक का आवरण पृष्ठ बिहार प्रदेश में भगवान महावीर की प्रथम देशना स्थली पर निर्मित समवशरण मन्दिर का रंगीन चित्र शोभा बढ़ाता हुआ उनके आदर्शों पर ध्यान देने को प्रेरित करता है।

कविवर श्री दौलत राम पर परिचैय एक नवीन जानकारी सामने रखता है, और उनकी साहित्यिक यात्रा का परिचय कराकर जहां सूर, तुलसी, मीरा आदि का स्मरण कराता है, वहीं आराध्य के प्रति आत्म समर्पण की भावना प्रेरित कर ध्यान आकृष्ट करता है।

जैन परम्परा में व्रतों का महत्व, व वाग्देवी के अवतरण का पर्व - श्रुतपंचमी, संक्षिप्त होते हुये भी ध्यान आकृष्ट करते हैं और उनकी वास्तविक स्थिति को ज्ञातकर शांति प्रदान करते हैं। इस सन्दर्भ में जैनत्व की कसौटी भी अवलोकनीय है।

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित धर्म का मर्म एवं सुख का सन्देश अच्छा शोधपूर्ण आलेख होकर जैन धर्म व उस सम्बंधी ग्रन्थों के समझने के लिये प्रेरित करता है जिससे जीवन सार्थक हो सकता है।

द्वन्द शमन के उपाय मानव जीवन को सुख से सुखतर बनाने हेतु आवश्यक है, तवज्जुह दी जाना चाहिये।

कन्या भ्रूण हत्या कैसे रोकें - आधुनिक सामाजिक युग की बुराई पर ध्यान आकृष्ट कर समाज को उन्नत दिशा में ले जाने हेतु प्रेरित करता है। बुराई दूर करने का प्रयत्न आवश्यक प्रतीत होता है।

Discovery of Truth ध्यान देने योग्य है। ये ही सबका सार है। सत्य के बिंना सब व्यर्थ है और इसको अपनाने से जीवन सच्चे अर्थ में उपयोगी होकर आनन्द का संचार करता है। आलेख सुन्दर होकर पठनीय है।

कवितायें आकर्षक हैं, फिर भी 'दुख' विशेष ध्यान खींचती है।

अंक की अन्य जानकारी व समाचार आदि भी पठनीय हैं। साहित्य सत्कार के अन्तर्गत दी गई ग्रन्थों की समीक्षा संक्षिप्त होते हुये भी सारगर्भित है। उन्हें देखने की ललक जगाती है।

इस प्रकार अंक अच्छा संग्रहणीय बन पड़ा है। उसकी विकास यात्रा बड़ी शिद्दत से अग्रसर हो रही है। सम्पादक व सहयोगी भाई सभी बधाई के पात्र हैं। बधाई स्वीकार कीजिये।

थककर बैठ जाने से कभी कुछ हाथ नहीं आता,
हौसला अगर हो तो, सब फासले दूर हो जाते हैं,
कुछ कर गुजरने की यदि ठान ली है तुमने,
तो फिर इंतजार किसका, दृढ़ता से कदम बढ़ाना चाहिए,
साहस और परिश्रम की डोर पकड़ना ही आवश्यकीय है।

- श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

डा. मिश्रीकोटकर ने एक पुस्तक भेजी थी। उसमें है महावीर ने कहा था मैं फिर जन्म नहीं लूंगा। यह विषय मेरे विचार का विषय है।

जन्म कौन लेता है, आत्मा तो नहीं। यह न जन्मा है, न इसकी मृत्यु है तो फिर जन्म किसका।

नया शरीर का दुबारा जन्म? असंभव।

लेकिन पुराने किसी जन्म को, कुछ बातें इस जन्म में याद हैं यह कई जगह देखने में आई हैं। कई पुस्तकों में भी छपी हैं।

तो क्या इस भर से दुबारा जन्म समझ लिया जाये।

और यह दुबारा जन्म है तो किसका?

रूढ़िवादिता में न जाकर स्वतंत्र चिंतन का विषय है।

- साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, खुर्जा

शोधादर्श ७० नये कलेवर के साथ आकर्षक कवर मुद्रण के साथ प्राप्त हुआ। समाज चिंतन में डा० शशि कान्त जी द्वारा उठाये गये सभी बिंदु प्रेरणादायी व चिंतनीय हैं।

विवाह विमर्श आज आवश्यक है। विवाह संस्था हमारी फिसलन भरी राहों पर चल रही है, दिनोंदिन इसकी मर्यादा तार-तार हो रही है। हमारे नेतृत्व को अवश्य सोचना चाहिए।

डा० ज्योति प्रसाद जी का लेख 'जैन परम्परा में व्रतों का महत्व' पठनीय है। श्री दर्शन लाड़ का आलेख भी गृहणीय है।

'कन्या भ्रूण हत्या' पर डा० राजेन्द्र कुमार बंसल का विश्लेषण अच्छा लगा। हमारी जैन समाज में कन्या भ्रूण हत्या पर रोक लगना चाहिए।

- श्री सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, ललितपुर

विद्वत् समुदाय में प्रतिष्ठित एक ज्ञानवर्धक पत्रिका है। यह साहित्य के नवीन एवं विविध आयामों को स्पर्श करती है। इसमें जैन संस्कृति, धर्म, इतिहास एवं पुरातत्व विषयक शोधपरक आलेखों के साथ सामाजिक चेतना का स्वर भी मुखरित होता है। इसके विविध स्तम्भ पाठकों की जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं। निःसन्देह यह शोध पत्रिका भारतीय मनीषा का श्रेष्ठ निदर्शन है। **-डॉ. संगीता मेहता**

प्राध्यापक संस्कृत, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर

सूचना

प्रा. क. ध. मिश्रीकोटकर, धर्म लक्ष्मी, उदय कालोनी, चांदूर बाजार, जिला अमरावती (महा.)- ४४४७०४ ने अपने भाई श्री अजित कुमार जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शरयूबाई की स्मृति में **श्री नित्य नैमित्तिक पाठावली** का प्रकाशन किया है। इसमें श्रावकों के लिए पठनीय स्तोत्र आदि संकलित है। इसकी एक प्रति दिगम्बर जैन मंदिरों में बिना मूल्य देने की उनकी इच्छा है। मंदिरों के व्यवस्थापक तथा अन्य भाई-बहन भी इस पुस्तक के लिए उनसे सम्पर्क कर सकते हैं।

अनुक्रमणिका शोधादर्श ६७-७१

शोधादर्श ४२ में अंक १-४२ में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका प्रकाशित की गई थी। **शोधादर्श** ४८ में अंक ४३-४८ की, अंक ५४ में अंक ४६-५४ की, अंक ६० में अंक ५५-६० की और अंक ६६ में अंक ६१-६६ की अनुक्रमणिका दी गई थी। उसी क्रम में **शोधादर्श** ६७-७१ (२००६-१० ई.) में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका नीचे दी जा रही है। अंक ६८ 'श्री रमा कान्त जैन स्मृति अंक' के रूप में प्रकाशित था।

खण्ड क : लेखक वृन्द

लेखक/रचनाकार	शीर्षक	अंक	पृष्ठ
१. श्री अमरनाथ	दुख (पद्य)	७०	४२
	साहित्य परिचय-'दर्द का रिश्ता'		५५-५७
	माटी की पुकार (पद्य)	७१	५०-५१
२. डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल	श्रद्धांजलि सभा-रिपोर्ट	६८	४७-४८
३. श्री अजित कुमार वर्मा	श्री कृष्ण (पद्य)	६६	४०
	दीपावली (पद्य)	७१	४८
४. श्री अजित जैन 'जलज'	अहिंसक धर्म एवं विज्ञान के आलोक में अपना आहार	६७	३१-३५
५. श्रीमती आशा जैन	मेरी आंखों की रोशनी : देवता तुल्य पति	६८	३१-३२
६. श्रीमती इन्दु कान्त जैन	यादों के झरोखे से	६८	१७-२१
	साधुचर्या : प्रश्न जो समाधान चाहते हैं	७१	४४-४६
७. डॉ. उषा माथुर	The Jain Literature in Hindi	७१	२८-३०
८. डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव	श्रद्धेय भाई रमा कान्त को भावभीनी श्रद्धांजलि	६८	५४
९. डॉ. एन. सुन्दरम	तमिल संघोत्तर काल में जैन काव्य	६६	१४-१६
	अनुपूरक	७०	५४
१०. श्री ओंकारश्री	'गिलास आधा भरा है' और 'दशलक्षण पर्व'	६७	५८-५६
	जैनत्व की कसौटी	७०	२६-३२
११. पं. काशीनाथ गोपाल गोरे	संस्मरण	६८	२८
१२. श्री कैलाशचंद जैन	कोंपल जो मजबूत तना न बन सकी	६८	१६
	साधुचर्या : सुमेरुचंद दिवाकर • कहाँ हैं	७१	४७
१३. डॉ. गणेश दत्त 'सारस्वत'	रूप नगर की बाट में (पद्य)	६८	३६
	सावधान, प्रकाश पुत्रों (पद्य)	७०	४२
१४. श्री दर्शन• लाड़	आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित धर्म का मर्म एवं सुख का सन्देश	७०	२२-२६
१५. श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	पाप-मूल ही क्रोध है (पद्य)	६६	४१
१६. श्री धनेन्द्र कुमार जैन	श्रावकोचित आचार क्या हो	६६	४६

१७. श्री नरेशचंद जैन	मित्र का वियोग	६८	३०
१८. श्रीमती निधि जैन	वात्सल्य की प्रतिमूर्ति : पूज्य पापा जी	६८	३५-३६
१९. पं. निहालचंद जैन	अहिंसा विमर्श	७१	३६-४३
२०. डॉ. परमानन्द जड़िया	साधक सिद्ध प्रवीण रहें (पद्य)	७१	४८
	परिचय : 'दर्द का रिश्ता'		५४-५५
२१. कु. पलक जैन	सत्यम् शिवम् सुन्दरम्	६८	४२
२२. वैद्य प्रकाशचंद जैन 'पाण्ड्या'	राजस्थान में जैन धर्म की प्राचीनता	६६	२८-३१
२३. डॉ. पी. जी. मिश्रीकोटकर	Discovery of Truth	७०	३७-४०
२४. श्री भगवान भरोसे जैन	स्व. श्री रमा कान्त जैन : एक व्यक्तित्व	६८	४०-४१
२५. भदन्त आनन्द कौसल्यायन	श्रमणों की समस्या	६७	१६-२४
२६. श्री मदनमोहन वर्मा	दो मुक्तक (पद्य)	६७	१४
	'हम हिंदी बोलें हिन्दी', 'दशलक्षण पर्व', और 'गिलास आधा भरा है'		५५-५८
	विचार बिन्दु	७०	३६
२७. डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को काव्यांजलि (पद्य)	६७	८५
	वेदनापूर्ण हार्दिक हृदयोद्गार	६८	५३
	चैतन्य विस्तार	६६	३८
	अनन्त खोज	७०	४३
	पुष्पेन्दु तुम्हें छूकर पतझड़ भी आज बसंत बहार बन गया	७१	५२-५३
२८. डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया	आध्यात्मिक गीत (पद्य)	६७	५४
२९. डॉ. मीनाक्षी जैन डागा	जैन संस्कृति में नारी की स्थिति	६६	१८-२१
३०. श्री मुकेश जैन	'दर्द का रिश्ता'	७१	५५
३१. श्री मेघराज जैन गर्ग	जरा सोचिए	६७	५०-५१
३२. कु. मेहा जैन	तमिलनाडु में प्राचीन जैन अवशेष	६६	१७
३३. श्री मोतीलाल विजय एवं श्रीमती विमला जैन	मनस्वी रमा कान्त जी	६८	२४-२५
३४. श्रीमती मंजरी जैन	कहां खो गये मेरे भैया जी	६८	२६
३५. श्री रवि मोहन त्रिवेदी	(अजातशत्रु) थे मनीषी रमा कान्त जैन	६६	४६-५१
३६. श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश	भाई रमा कान्त जैन : एक अनुकरणीय व्यक्तित्व	६८	३३-३४
३७. डॉ. (श्रीमती) राका जैन	स्नेह-मूर्ति श्री रमा कान्त जैन	६८	३६
३८. श्री राजीव कान्त जैन	मील का पाषाण (पद्य)	७०	४१
	मांग रहा मैं क्षमा (पद्य)	७१	४६
३९. श्री राजेन्द्र कुमार बंसल	वीतरागी साये में पुरुषों द्वारा देवी के श्रृंगार का औचित्य	६७	२५-३०
	श्री रमा कान्त जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का निदर्श : शोधादर्श ६७	६८	४३-४६
	कन्या भ्रूण हत्या कैसे रोके	७०	३३-३६
४०. श्री लूणकरण नाहर	भजन - महावीर जयंती	६७	६५
	स्मृतिशेष श्री रमा कान्त जैन को श्रद्धा सुमन	६८	२२-२३
४१. प्रो. विजय कुमार जैन	मध्यमार्गी श्री रमा कान्त जी	६८	२६
४२. पं. विष्णुदत्त शर्मा	मोती बिखर गया	६८	३७-३८

४३. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन	द्वन्द शमन के उपाय	७०	२७-२८
४४. कु. शगुन जैन	आदरणीय बाबा जी की यादें	६८	३८
४५. श्री शांतिलाल जैन बैनाड़ा	श्रावक की जिज्ञासा	७०	३२
४६. डॉ. शिवप्रसाद	तपागच्छीय पूर्णचन्द्र सूरि के पट्टधर हेमहंस सूरि	६७	३६-४१
	तथाकथित वीर निर्वाणभूमि पावा की प्राचीनता	७१	२३-२७
४७. श्रीमती सरोज सांधेलीय	प्राचीनता का परिचायक आदीश्वरगिरि	६७	४४-४५
४८. डॉ. सागरमल जैन	'परिशिष्ट पर्व' की भूमिका	७१	३१-३५
४९. श्रीमती सीमा जैन	हमारे पापा जी	६८	३२
५०. श्री सुरेन्द्र पाल जैन	जिज्ञासा -तमिल जैन काव्य	७०	५४
५१. श्री सुरेश जैन 'सरल'	पत्रिकारिता के कान्त 'रमाकान्त	६८	१४-१६
५२. डॉ. संगीता दिलीप मेहता	जैन संस्कृति का प्रतीक स्वस्तिक	६९	२२-२७
५३. डॉ. संगीता सिंह	शूरसेन जनपद में जैन संस्कृति की विशेषताएं	६७	४६-४७
५४. डॉ. स्वयंप्रभा पि. पाटिल	उत्तम क्षमा के अनोखे प्रयोग	६९	३२-३७
	खण्ड-ख सम्पादक मण्डल		
१. श्री अजित प्रसाद जैन	णमो लोए सव्व साहुणं	६७	१२-१३
	मंगल श्लोक	६९	८
	वाग्देवी के अवतरण का पर्व श्रुत पंचमी	७०	१५-१८
	भगवान महावीर की निर्वाणस्थली पावा	७१	२१-२२, ५३
२. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	१७वीं शती के एक अंग्रेज द्वारा जैनों का वर्णन	६७	१०-११
	क्यों फिर होता व्यर्थ अधीर (पद्य)		११
	मनुष्य का स्वाभाविक आहार		३५
	अपरिग्रह विमर्श	६९	९-११
	जैन परम्परा में व्रतों का महत्व	७०	१३-१४
	विजय नगर साम्राज्य	७१	१८-२०
३. श्री रमा कान्त जैन	गुरुगुण कीर्तन : प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल संघवी	६७	१-६
	गद्यकार श्री दौलतराम कासलीवाल	६९	५-८
	कविवर श्री दौलतराम	७०	५-८
	पण्डित प्रभाचंद्र	७१	५-१२
	सम्पादकीय : जैन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठ	६७	७-९
	सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं		३०
	डॉ. जगदीश चंद्र जैन		४२-४४
	हमारे मन्दिर (पद्य)		४५
	डॉ. पूर्णचंद्र जैन		५२-५३, ६५
	साहित्य सत्कार (२१ पुस्तकें)		६१-७४
	विनती	६८	५
	भावना		५
४. डॉ. शशि कान्त	Adoration in Jainsm	६७	१५-१८
	साहित्य सत्कार (२ पुस्तकें)		६०-६१
	आत्मीय की व्यथा कथा	६८	१२-१३
	पं. गया प्रसाद तिवारी 'मानस'		७५

	जनगणना २०११ और जैन समाज	६९	१२-१३
	साहित्य सत्कार (२९ कृतिया)		५२-६१
	समाज चिन्तन	७०	९-१२
	साहित्य सत्कार (२८ कृतियां)		५८-६५
	मानव जीवन का यथार्थ बोध	७१	१३-१७
	साहित्य सत्कार (२४ कृतियां)		५६-६३
५. डॉ. अलका अग्रवाल	साहित्यकार, सम्पादक एवं जैन धर्म-संस्कृति के मर्मज्ञ श्री रमा कान्त जैन	६८	२७-२८
६. श्री अंशु जैन 'अमर'	गुरुगुण कीर्तनःश्री रमा कान्त जैन	६८	७-११
	स्व. रमा कान्त जैन के कृतित्व की एक झांकी		७०-८८
	श्रुत और उसका संरक्षण	७०	१९-२१
	अभिनन्दन		६६-६७
७. संदीप कान्त जैन	मंदिर महासंघ समाज का नेतृत्व कर सकता है	६७	४८-४९
	काश! हम उन्हें बचा सकते	६८	२३
	श्रद्धा सुमन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से		६४-६५
	समाचार विविधा		८९-९४
८. श्री नलिन कान्त जैन	सम्पादकीय निवेदन		
		६८	६
		६९	४
		७०	४
		७१	४
	तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति		
	प्रगति प्रतिवेदन २००८-०९	६८	६६-७१
	प्रगति प्रतिवेदन २००९-१०	७०	४५-४९
	कन्या भ्रूण हत्या उन्मूलन अभियान	६९	४२-४५

खण्ड-ग विविध

जन्म जयंती पर स्मरण ६७ (७७-७९), ६९ (४७-४८),
पुण्य तिथि पर पुनीत स्मरण ६८ (७२-७४), ७० (५०-५३)
समाचार विविधा ६७ (७५-८०), ६८ (८९-९४), ६९ (६२-६६), ७० (६८-७०), ७१ (६७-७०)
अभिनन्दन ६७ (८१-८३), ६८ (९५-९६), ६९ (६७), ७० (६६-६७), ७१ (६४-६५)
शोक सम्वेदन ६७ (८६), ६८ (८८), ६९ (६८-७०), ७१ (६६)
पाठकों के पत्र ६७ (८७-९४), ६८ (९७-१००), ६९ (७१-७६), ७० (७१-७९), ७१ (७१-७६)
आभार ६७ (७४), ६८ (९७), ६९ (७०), ७० (७९), ७१ (६५)
श्री रमा कान्त जैन के प्रति : श्रद्धांजलि संदेश ६८ (५५-६३)
चित्रावलि (४९-५२,१०१, मुख पृष्ठ)
संकलित : महावीर वाणी ६७ (१४)
श्री महावीर जी ६७ (आवरण २)
ऋषभनाथ स्तुति ६७ (६)
सूचना : जैन वेबसाइट ६७ (८४-८५); ७१ (७६)
शोधादर्श : आजीवन अभिदाता : ६९ (७७-७८)
वार्षिक अभिदाता : वर्ष २००९ ६९ (७९-८०)
वर्ष २०१० ७० (८०), ७१ (६५)
अनुक्रमणिका अंक ६७-७१ : ७१ (७७-८०)

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

प्रबन्ध समिति

(१ जनवरी २०१० को सर्वसम्मति से निर्वाचित)

अध्यक्ष	श्री लूण करण नाहर जैन
उपाध्यक्ष	श्री नरेश चन्द्र जैन
महामंत्री	श्री नलिन कान्त जैन
संयुक्त मंत्री	डॉ. विनय कुमार जैन
उपमंत्री	श्री महेन्द्र प्रसाद जैन, श्री रोशनलाल नाहर
कोषाध्यक्ष	श्री बिजय लाल जैन
सदस्य प्रबन्ध समिति	डॉ. शशि कान्त, श्री सन्दीप कान्त जैन, श्री रोहित कुमार जैन, श्री धनेन्द्र कुमार जैन, श्री आदित्य जैन, श्री दीपक जैन, श्री अजय कुमार जैन कागजी, श्री अंशु जैन 'अमर' श्री राकेश कुमार जैन, श्री हंसराज जैन

प्रकाशन

भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ	सं. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	50/-
Bhagwan Mahavira: Life, Times & Teachinigs	by Dr. Jyoti Prasad Jain	5/-
Way to Health & Happiness - Vegetarianism	by Dr. Jyoti Prasad Jain	4/-
Mysteries of Life & Eternal Bliss	by Prof. Anant Prasad Jain	7/50
जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य	लेखक प्रो. अनन्त प्रसाद जैन	7/50

पांचों प्रकाशन मात्र रु. 70/- में प्राप्त किये जा सकते हैं। मूल्य लखनऊ में देय चेक या ड्राफ्ट द्वारा 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम महामंत्री को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-226004 के पते पर भेजा जाय।

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क ६० रु. (साठ रुपये), 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४', को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क २५ डालर है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की *दो प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक